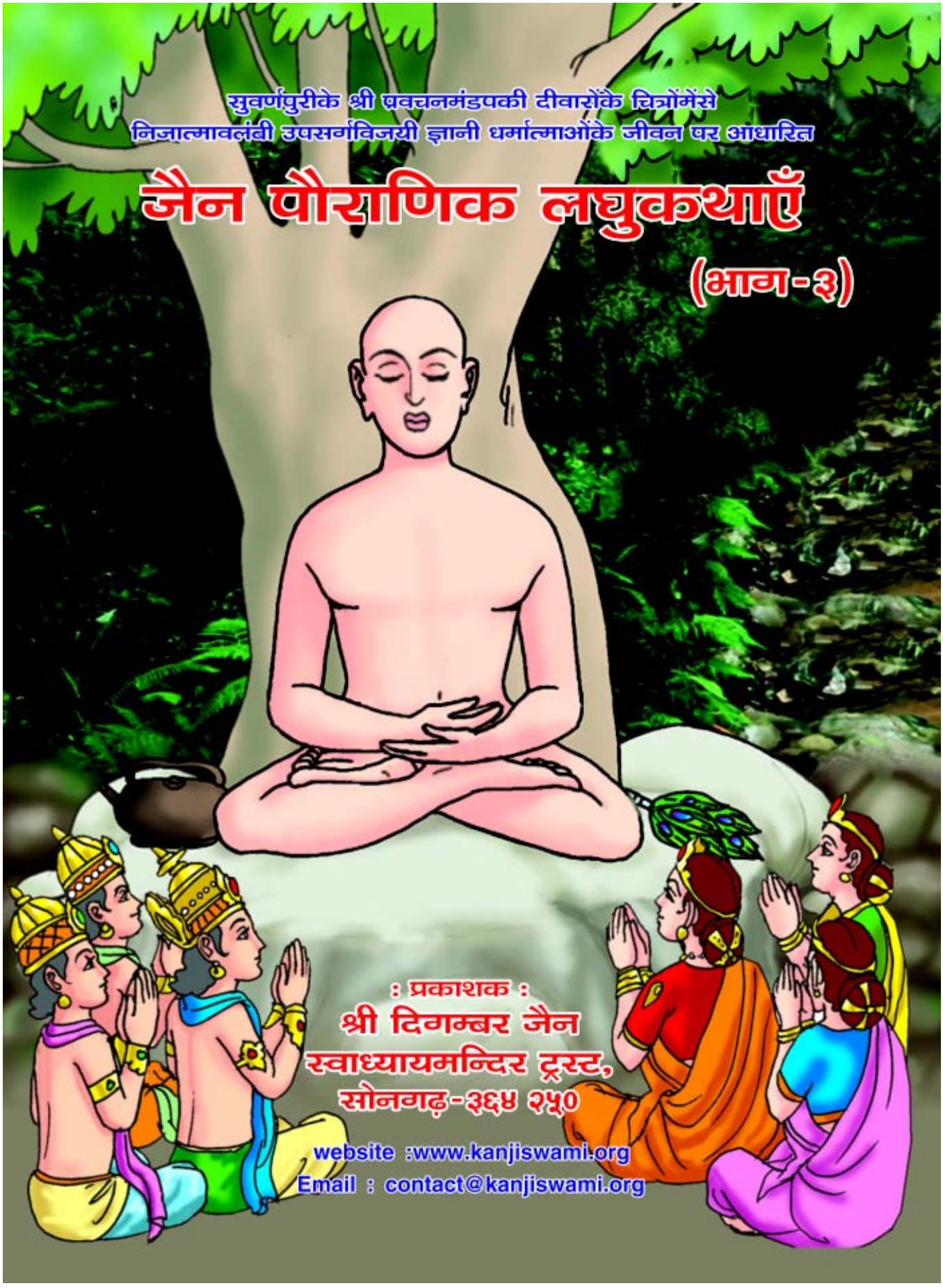
सुवर्णपुरीके श्री प्रवचनमंडपकी दीवारोंके चित्रोंमेंसे
निजात्मावलंबी उपसर्गविजयी ज्ञानी धर्मात्माओंके जीवन पर आधारित
जैन पौराणिक लघुकथाएँ
(भाग-३)
: प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन
स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,
सोनगढ़-३६४ २५०
website :www.kanjiswami.org
Email : contact@kanjiswami.org

विदेहीनाथ श्री सीमंधरस्वामी

भगवानश्रीकुन्दकुन्द-कहानजैनशास्त्रमाला, पुष्प-२४२

ॐ

नमः सद्गुरुवे।

सुवर्णपुरीके श्री प्रवचनमंडपकी दीवारोंके चित्रोंमेंसे
निजात्मावलंबी उपसर्गविजयी ज्ञानी धर्मात्माओंके जीवन पर आधारित

जैन पौराणिक लघुकथाएँ

(भाग-३)

: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,

सोनगढ़-364 250

website :www.kanjiswami.org

Email : contact@kanjiswami.org

प्रथम आवृत्ति

प्रत : १५०० वि. सं. २०७१ ई.स. २०१५

जैन पौराणिक लघुकथाएँ (हिन्दी) भाग-३के
स्थायी प्रकाशन पुरस्कर्ता
मंजुलाबेन धीरजलाल डेलीवाला तथा
धीरजलाल भाईलाल डेलीवाला और उनका परिवार

यह पुस्तकका लागत मूल्य रु. 59 = 00 है। मुमुक्षुओंकी आर्थिक सहायतासे इस आवृत्तिकी किंमत रु. 25 = 00 रखी गई है।

मूल्य : रु. 25=00

मुद्रक :
कहान मुद्रणालय
सोनगढ-३६४२५० (सौराष्ट्र)

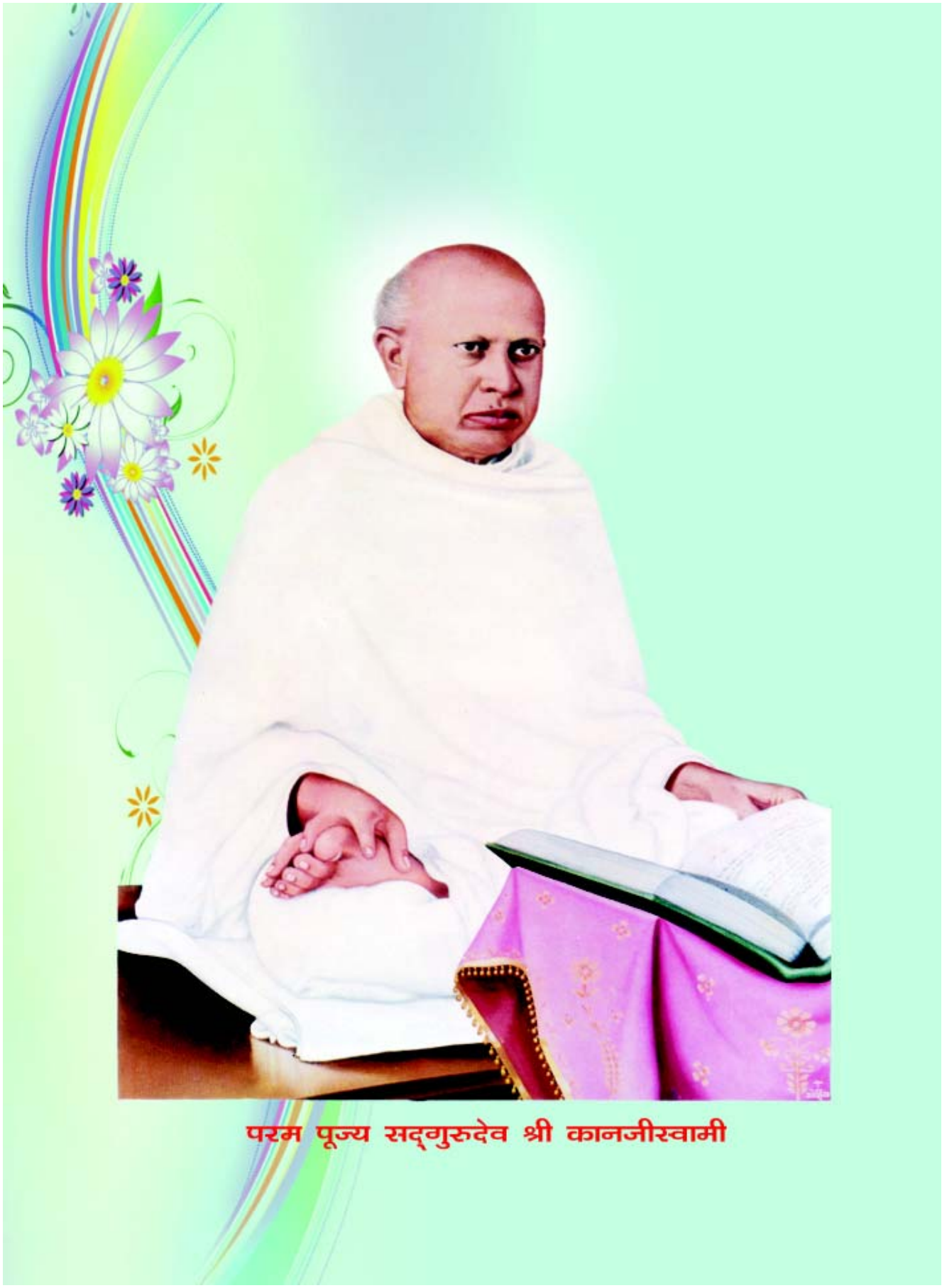

परम पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी

प्रकाशकीय निवेदन

परमोपकारी अध्यात्मयुगस्त्रष्टा, आत्मानुभवी सत्पुरुष पूज्य सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामीने अपनी अनुभवरसमयी आर्द्र वाणीमें जिनेन्द्रकथित चारों अनुयोगके सुमेलपूर्वक अध्यात्मरसगर्भित द्रव्यदृष्टिप्रधान उपदेशगंगा बहाई है; जिसमें स्नान करके भरतक्षेत्रके लाखों भव्य जीव अपना आत्महित साधनेको उत्सुक बने है; इस कारण सोनगढ़ एक अध्यात्म अतिशयक्षेत्र सुवर्णपुरीके रूपमें विश्वप्रसिद्ध तीर्थधाम बन गया है। पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रभावना उदयसे सुवर्णपुरीमें स्वाध्यायमंदिर, जिनमंदिर, समवसरण मंदिर, मानस्तंभ, प्रवचनमंडप, परमागममंदिर, नंदीश्वर जिनालय आदि भव्य जिनायतनोंकी रचना हुई है। पूज्य गुरुदेवश्रीकी अनन्य भक्त, स्वानुभवविभूषित, पूज्य बहिनश्री चंपाबेनको मुनि भगवंतों व आत्मज्ञानी महापुरुषोंके जीवनसे बहुत लगाव था। जिससे वे अपने जीवनमें संवेग-वैराग्यभावको वृद्धिगंत करती रहती थीं। वे महिलासभामें भी सभीको महापुरुषों व सतीयोंके जीवनके प्रसंग बहुत आर्द्रभावसे बताती थीं। उन प्रसंगोंमेंसे कई प्रसंग ऐसे होते कि जिससे जीवोंको निरुपराग उपयोगरूप मोक्षमार्ग पर आत्मार्थीयोंको महत्त्व आये। ऐसे प्रसंगोचित कथाओं आधारित विविध पौराणिक चित्र उक्त आयतनोंमें मुख्यरूपसे अपने प्रथमानुयोगके शास्त्रज्ञानके आधारसे उत्कीर्ण एवं चित्रांकित कराए। निर्ग्रंथ मुनि भगवंतोंके दर्शन हो ऐसे ही दृश्य इन चित्रोंमें मुख्यरूपसे उन्होंने लिए हैं, जिसमें उनकी संवेगादि भावनाओंसे आयतनोंकी शोभा बढ़ गई है, एवं इन आयतनोंके दर्शन करनेवाले भाविकजनोंको विविध पुराण आधारित कथाओंसे अपनी संवेगादि भावनाओंको वृद्धि करनेका लाभ मिला है।

कुछ मुमुक्षुओंकी भावनाको लक्ष्यमें लेकर सोनगढ़से प्रकाशित हिन्दी आत्मधर्ममें पूज्य बहिनश्रीके अंतरमें वर्तती वीतरागी महापुरुषोंके प्रति अहोभाव, श्रद्धा, भक्ति आदिको देखकर, मुमुक्षुओंको अंतरमें भी ऐसे ही भाव जागृत हो इस हेतुसे इन चित्रोंके आधारसे आचार्यदेवरचित पुराणोंमेंसे बालविभागमें कथाएँ देना प्रारंभ किया गया था। भव्य साधकजीवोंकी ये कथाएँ पढ़नेसे कुछ मुमुक्षुओंने ये कथाएँ पुस्तकके रूपमें प्रकाशित करनेकी मांग की थी। जिसके फलस्वरूप सुवर्णपुरीके स्वाध्यायमंदिरमें आलेखित सात चित्रोंकी सात कथाओंका ''जैन पौराणिक लघुकथाएँ भाग-1'' व श्री सीमंधरस्वामी जिनमंदिरमें अंकित पौराणिक चित्रोंके आधारसे ''जैन पौराणिक लघु कथाएँ भाग-2'' नामक रंगीन पुस्तक प्रकाशित किये गये है। उसी भांति इस बार सुवर्णपुरीमें स्थित प्रवचनमंडप व स्वाध्यायमंदिरमें लगे चित्रोंमेंसे शुद्धात्मद्रव्यमें प्रतिबद्ध रहते ज्ञानी भगवंत कैसे

सहज 'उपसर्ग विजयी' होते हैं, उन धर्मात्माओंके चित्रोंकी कथा संबंधित पुस्तक **''जैन पौराणिक लघु कथाएँ भाग-३''**के रूपमें प्रकाशित की जा रही है। इस पुस्तकमें संपादित किये सात प्रवचनमंडपके चित्रके अलावा अन्य चित्रोंको अन्य 'जैन पौराणिक लघुकथाएँ भाग-4'के रूपमें प्रकाशित की जायेगी।

आगे अन्य मंदिरोंमें आलेखित चित्रोंके आधारसे कथाओंके ऐसे ही पुस्तक भी प्रकाशित करनेकी श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़की भावना है।

इस पुस्तकमें आवश्यकताके अनुरूप मूल कथाकी हकीकत एवं हार्दको यथावत रखकर भाषामें सामान्य सुधार किया है।

यह पुस्तक तैयार करनेमें बा. ब्र. श्री व्रजलालभाई शाह(वढ़वाण)ने उपयोगी मार्गदर्शन दिया है, अतः हम अंतरसे उनके आभारी हैं। इस पुस्तकके सुंदर चित्र श्री जयदेवभाई अग्रावतने बनाये हैं एवं पुस्तकका मुद्रण कहान मुद्रणालय द्वारा किया गया है। हम उन सभीके आभारी है।

इस पुस्तककी कथायें संक्षिप्त स्वरूपमें प्रवचनमंडप आदिके चित्रोंके दृश्योंकी आधारित दी गई हैं। विशेष अभ्यासके लिये जिज्ञासुओंको जैनधर्मके प्रथमानुयोगका अभ्यास करना आवश्यक है। आशा है कि मुमुक्षु समाजको यह सचित्र पुस्तक महापुरुषोंके प्रति अपनी समर्पणतामय भक्ति, आदररूप सहज जीवन गढ़नेमें व अपने संवेगादि भावोंको बलवत्तर करनेमें कार्यकारी होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीकी
126वीं जन्म-जयंती
सोनगढ़-(सौराष्ट्र)
ता. 20-04-2015

साहित्यप्रकाशनसमिति
श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट,
सोनगढ-३६४२५० (सौराष्ट्र)

INDEX

अकंपनाचार्य Page-11

मुनिभगवंत श्री सुकुमारजी (सुकुमालजी) Page-21

पांच पांडव Page-51

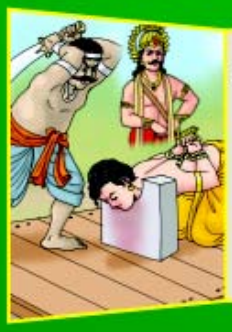

शील शिरोमणी सेठ सुदर्शन Page-55

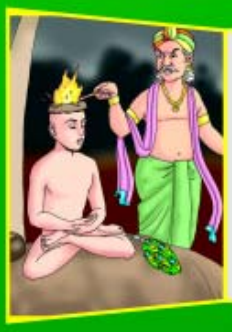

गजसुकुमार मुनि Page-67

सुकोशल मुनिराज Page-70

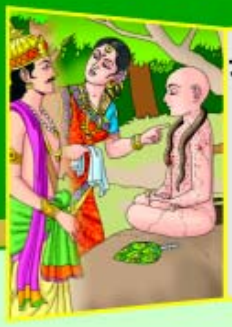

उपसर्ग विजयी यशोधर मुनिराज Page-82

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबेन

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

सुवर्णपुरीका भगवान श्री कुंदकुंद प्रवचन मंडप

पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रभावनोदय प्रारंभमें सौराष्ट्र–गुजरात तक ही सीमित था, परंतु हिन्दी 'आत्मधर्म'से तथा उसके द्वारा आकर्षित इंदौरके श्री हुकमचंदजी सेठ (वि. सं. २००१ (ई. स. १९४५) जेठ (गुज. वैशाख) कृष्णा षष्ठीको सोनगढ़ आकर अतिशय प्रभावित होनेसे, हिन्दीभाषी दिगंबर जैनोका प्रवाह सोनगढ़की ओर विशेष प्रवाहित हुआ। धीरे धीरे पूज्य गुरुदेवश्रीका पुनित प्रवाह इतना विस्तरित हुआ कि देशविदेशसे अनेक मुमुक्षु भाई–बहन, अनेक दिगंबर जैन विद्वान, त्यागीगण और ब्रह्मचारी पूज्य गुरुदेवश्रीका अश्रुतपूर्व अध्यात्म उपदेशका लाभ लेने सोनगढ़ आने लगे। उत्सवके दिनोंमें स्वाध्यायमंदिर एवं जिनमंदिर छोटा पड़ने लगा। बिना कोई स्तंभका विशाल कक्ष कि जिसमें प्रवचनके समय २५०० श्रोतागण बैठ सके ऐसा विशाल, 100' x 50', जिसकी दिवारों पर अनेक पौराणिक सुंदर चित्रावलि और तत्त्वबोधक सैद्धान्तिक सूत्रवाक्योंसे सुशोभित ऐसे अतिभव्य ''भगवान श्री कुंदकुंद प्रवचन मंडप'' का वि. सं. २००३ (ई. स. १९४७) को निर्माण हुआ। इस प्रवचनमंडपके शिलान्यास व उद्घाटन प्रसंग पर सर सेठ हुकमचंदजी, इन्दौर पधारे थे। उसके शिलान्यास प्रसंग पर श्री हुकमचंदजी सेठ भीतरके उल्लासपूर्ण अहोभावसे बोले थे कि—''इस महाराजजीके उपदेशके प्रभावसे बहुत जीवोंको लाभ हुआ है। मेरा भी अहोभाग्य है कि मुझे महाराजश्रीके चरणोंकी सेवाका लाभ प्राप्त हुआ है। मेरी तो भावना है कि मेरा समाधिमरण महाराजश्रीके समीपमें हो। आपके पास मोक्ष जानेका सीधा रास्ता है।''

उद्घाटनके दिन पूरा प्रवचनमंडप मुमुक्षु भाई-बहिनोंसे भर गया था। उस दिनके मांगलिक प्रवचनमें पूज्यश्रीने ''निज आत्माका शुद्ध स्वभावको परद्रव्य, शरीर, राग

आदिसे भिन्न व परिपूर्ण बताते हुए उसकी दृष्टि करना ही प्रथम सम्यग्दर्शन धर्म, जो जीवके जीवनमें पवित्रता (मंगल) लाता है। वह ही जीवनमें एक कर्तव्य है''—ऐसा बताया।

भगवान श्री कुंदकुंद प्रवचन मंडपके उद्घाटन प्रसंग पर पूज्य गुरुदेवश्रीके साथ इन्दौरके सर सेठ हुकमचंदजी और उनके सुपुत्र राजकुमारजी

इस मंडपके उद्घाटन प्रसंग पर सेठ हुकमचंदजीके साथ पं. श्री जीवन्धरजी तथा पं. श्री देवकीनंदनजी भी आये थे। उस समय बहुत सुंदर तत्त्वचर्चा चली जिसे समझकर उन्हें बहुत ही हर्ष हुआ। अंतमें पं. देवकीनंदनजी पूज्य गुरुदेवश्री प्रति बोले कि आपने ही सत्य समझाया है, अभी तक हमारी दृष्टिमें हम शास्त्रके अर्थ बिठाते थे परंतु शास्त्रका वास्तविक अर्थ क्या है? वह आपने ही सिखाया है। हमारा श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र, व्रत, त्याग आदि सभी भूलवाला था।'

उनके प्रति पूज्य गुरुदेवश्री भी कहते थे कि 'अभी तक मुझे बहुत पंडित मिले हैं, परंतु इनके (पं. श्री देवकीनन्दनजी) जैसा सरल कोई देखने नहीं मिला, सत्य बात स्वीकारनेमें उन्हें देर नहीं लगती।' इस भांति वह उद्घाटनका दिन अतिशय आध्यात्मिक तत्त्वचर्चा, प्रवचन आदिसे विशेष प्रकारका रहा।

वि. सं. २००३ (ई. स. १९४७) फाल्गुन शुक्ला प्रथमाके दिन उसके उद्घाटनके प्रसंग पर वे पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रभावना उदयसे अति प्रभावित होकर अपना आनन्द व्यक्त करते हुए बोले : ''मेरी सर्व संपत्ति पूज्य स्वामीजीके चरणोंमें न्योछावर कर दूँ तो भी कम है—ऐसा यहाँका वातावरण देखकर मुझे उल्लास आ रहा है।''

मंत्री सह राजा अकम्पनाचार्यादि 700 मुनियोंके दर्शनार्थ जाते हुए

अकंपनाचार्य

सात शतक मुनिवर दुःख पायो, हस्तिनापुर में जानो;
बलि ब्राह्मण-कृत घोर उपद्रव, सो मुनिवर नहिं मानो.
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी;
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु-महोत्सव भारी.

किसी समय उज्जैनी नगरमें प्रसिद्ध श्रीधर्मा नामका राजा रहता था, उसके श्रीमती नामकी पटरानी थी। वह वास्तवमें उत्तम शोभासे सम्पन्न और महा गुणवती थी। राजा श्रीधर्माके बलि, बृहस्पति, नमुचि और प्रह्लाद ये चार मन्त्री थे। ये सभी मन्त्री मन्त्र मार्गके जानकार थे।

एक बार सात सौ मुनियोंसे सहित, श्रुतके पारगामी, महामुनि अकम्पनाचार्यादि उज्जैनीके बाह्य उपवनमें बिराजमान हुए। उन महामुनियोंकी वन्दनाके लिए नगरवासी लोग सागरकी तरह उमड़ पड़े। महल पर खड़े हुए राजाने नगरवासियोंको देख, मन्त्रियोंसे पूछा, कि ये लोग असमयकी यात्रा द्वारा कहाँ जा रहे हैं? तब बलिने उत्तर दिया, कि हे राजन्! ये लोग अज्ञानी दिगम्बर मुनियोंकी वन्दनाके लिए जा रहे हैं। तदन्तर राजा श्रीधर्माने भी वहाँ जानेकी इच्छा प्रकट की। यद्यपि मन्त्रियोंने उन्हें बहुत रोका, तथापि वे चल ही पड़े।

अन्तमें विवश हो मन्त्री भी राजाके साथ गये और मुनियोंके दर्शन कर कुछ विवाद करना चाहते थे। उस समय गुरुकी आज्ञासे सब मुनि संघ मौन लेकर बैठा था। इसलिए ये चारों मन्त्री विवश होकर लौट आये। लौटकर आते समय सामने एक मुनिको देखकर राजाके समक्ष ही उन मुनिसे वाद करने लगे। सब मन्त्री मिथ्यामार्गमें मोहित थे, इसलिए श्रुतसागर नामक उक्त मुनिराजने उन्हें जीत लिया। मंत्रीयोंने राजा समक्ष अपनी हार जान, उन्होंने बादमें हरानेवाले मुनिराजसे बदला लेनेकी ठानी।

दूसरी ओर मुनिराजने रास्तेमें आते समय जो घटना घटी, उसे अपने गुरुको कह सुनायी। गुरुने उन मंत्रीयोंका स्वभाव जान, वे जरूर वैर लेंगे, ऐसा समझकर उस दिन

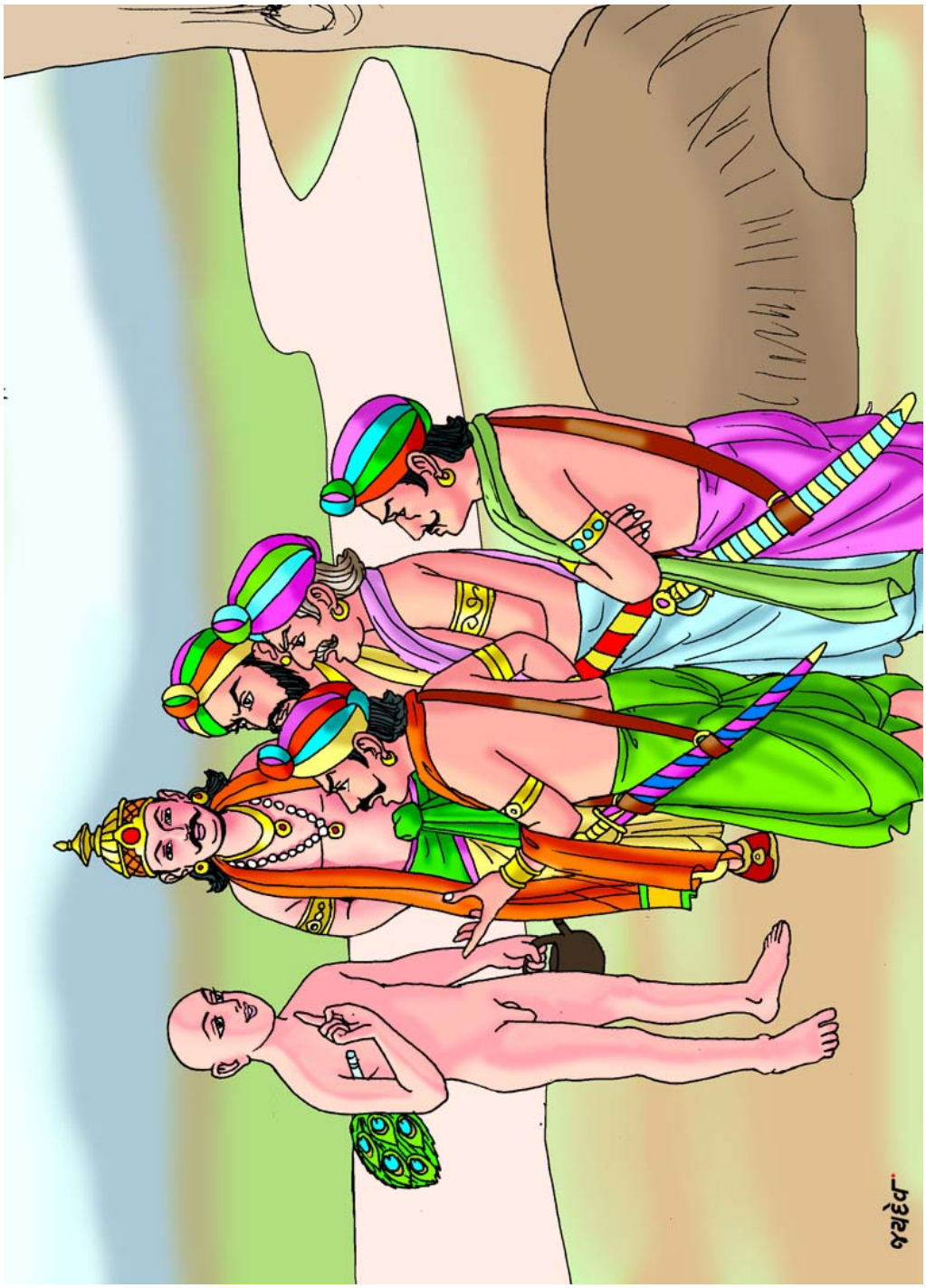

राजाके समक्ष मुनिराजसे वाद करनेमें हार खाते मंत्रीगण

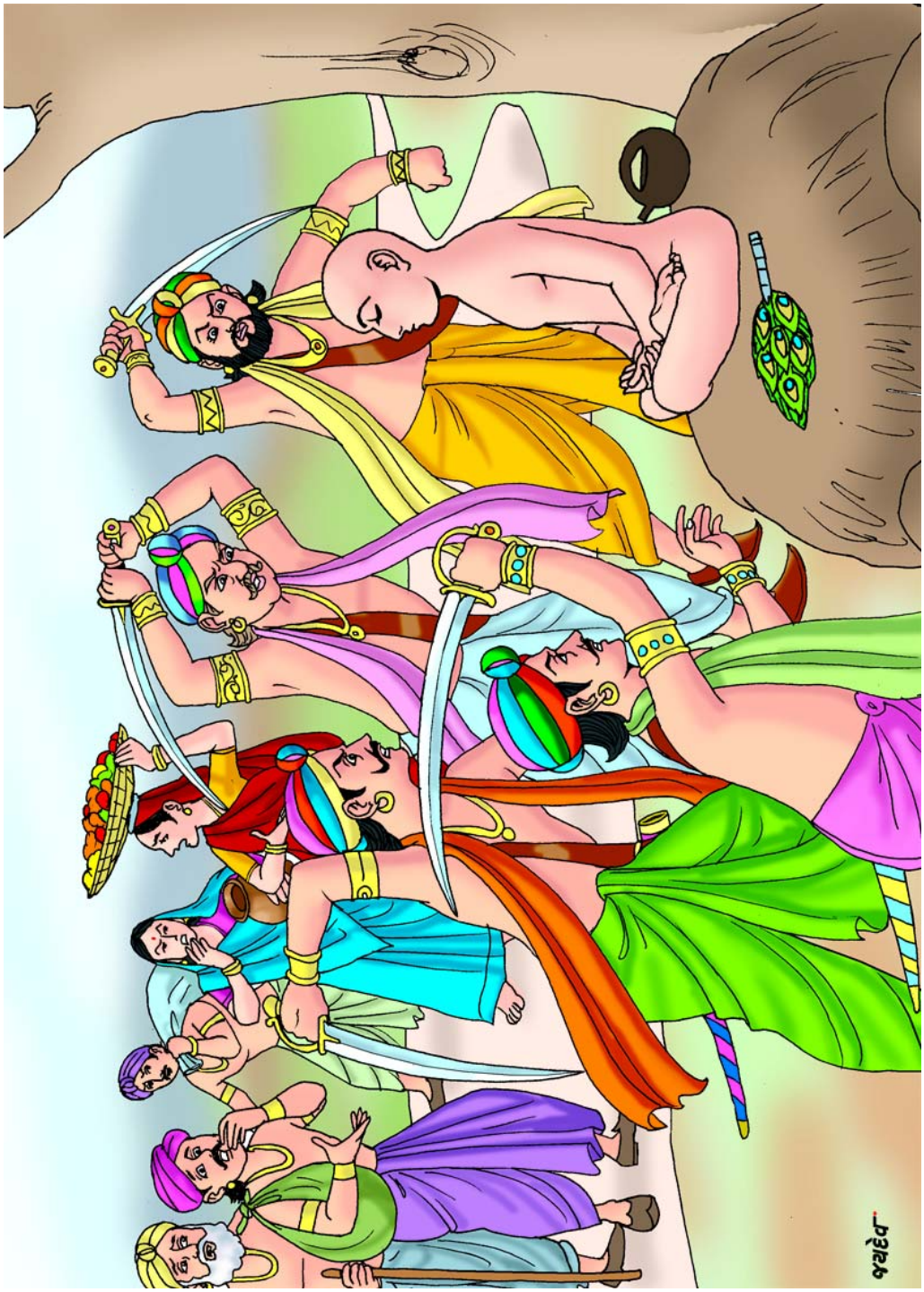

श्रुतसागर मुनि पर उपसर्ग करते मंत्रीयोंको देवयोगसे किलित होते देख
प्रजाजन मंत्रियोंके कृत्य पर आश्चर्यान्वित व उद्वेगित

रात्रि तक श्रुतसागर मुनिराजको जहाँ वाद-विवाद हुआ, वहीं प्रतिमायोगसे बिराजमान रहनेकी आज्ञा दी। महामुनिराज अकम्पनाचार्यकी आज्ञासे उसी दिन रात्रिके समय वे श्रुतसागर मुनिराज प्रतिमा योगसे वहीं पर विराजमान थे। वह देख सब मन्त्री उन्हें मारनेके लिए गये; परंतु देवने उन्हें कीलित कर दिया। यह देख राजाने मत्रीयोंको अपने देशसे निकाल दिया।

एक समय हस्तिनापुरमें महापद्म नामक चक्रवर्ती रहता था। उसकी आठ कन्याएँ आठ विद्याधर हरकर ले गये थे। शुद्ध शीलको धारण करनेवाली वे कन्याएँ जब वापस लायी गई तो वे संसारसे विरक्त हो गये। उधर संसारसे विरक्त हो, वे आठ विद्याधर भी तप करने लगे। इस घटनासे चरमशरीरी महापद्म चक्रवर्ती भी संसारसे विरक्त हो गये। जिससे उसने लक्ष्मीवती रानीसे उत्पन्न पद्म नामक बड़े पुत्रको राज्य देकर, छोटे पुत्र विष्णुकुमारके साथ भगवती जिन दीक्षा धारण कर ली। जिस प्रकार सागर नदीयोंका भण्डार होता है, उसी प्रकार रत्नत्रयके धारी एवं तप तपनेवाले विष्णुकुमार मुनि अनेक ऋद्धियोंके भण्डार हो गये।

उज्जैनी नगरीसे निकाले जानेके पश्चात् देशकालकी अवस्थाको जाननेवाले बलि आदि मन्त्री, नये राज्य पर आरूढ राजा पद्मकी सेवा करने लगे। उस समय राजा पद्म, बलि मन्त्रीके कुनेहसे किलेमें स्थित सिंहबल राजाको पकड़नेमें सफल हो गया। इसलिए उसने बलिसे कहा, कि वर मांगकर इष्ट वस्तुको ग्रहण करो। बलि बड़ा चतुर था; इसलिए उसने प्रणाम कर, उक्त वरको राजा पद्मके पासमें धरोहर रख दिया अर्थात् 'अभी आवश्यकता नहीं है, जब आवश्यकता होगी तब माँग लूँगा;' यह कहकर अपना 'वर' धरोहर रूपमें राजा पद्मके पास रख दिया। तदन्तर बलि आदि चार मन्त्रियोंका सन्तोषपूर्वक समय व्यतीत होने लगा।

अथानन्तर किसी समय धीरे-धीरे विहार करते हुए अकम्पनाचार्य, ७०० मुनियोंके साथ हस्तिनापुर आये और चार माहके लिए वर्षायोग धारण कर नगरके बाहर विराजमान हो गए। तदनन्तर शंकारूपी विषको प्राप्त हुए बलि आदि मन्त्री भयभीत हो गये और अहंकारके साथ उन्हें दूर करनेका उपाय सोचने लगे। बलिने राजा पद्मके पास आकर कहा, कि राजन्! आपने मुझे जो 'वर' दिया था; वह आपके पास धरोहररूपमें है, उसे आज मैं माँगता हूँ; कि उसके फलस्वरूप सात दिनका राज्य मुझे दिया जाये। 'सँभाल, तेरे लिए सात दिनका राज्य दिया'। यह कहकर राजा पद्म अदृश्य समान रहने लगा। बलिने राज्य सिंहासनपर आरूढ होकर उन अकम्पनाचार्य आदि मुनियों पर उपद्रव करवाया। उसने चारों ओरसे मुनियोंको घेरकर, उनके समीप पत्तोंका धुआँ कराया तथा झूठन व कुल्हड आदि फिकवाये। अकम्पनाचार्य सहित सब मुनि 'यदि उपसर्ग दूर होगा तो आहार-विहार करेंगे, अन्यथा नहीं' इस प्रकार सावधिक संन्यास धारण कर आत्म स्थिरता सह उपसर्ग जीतते हुए कायोत्सर्गसे खड़े रह गये।

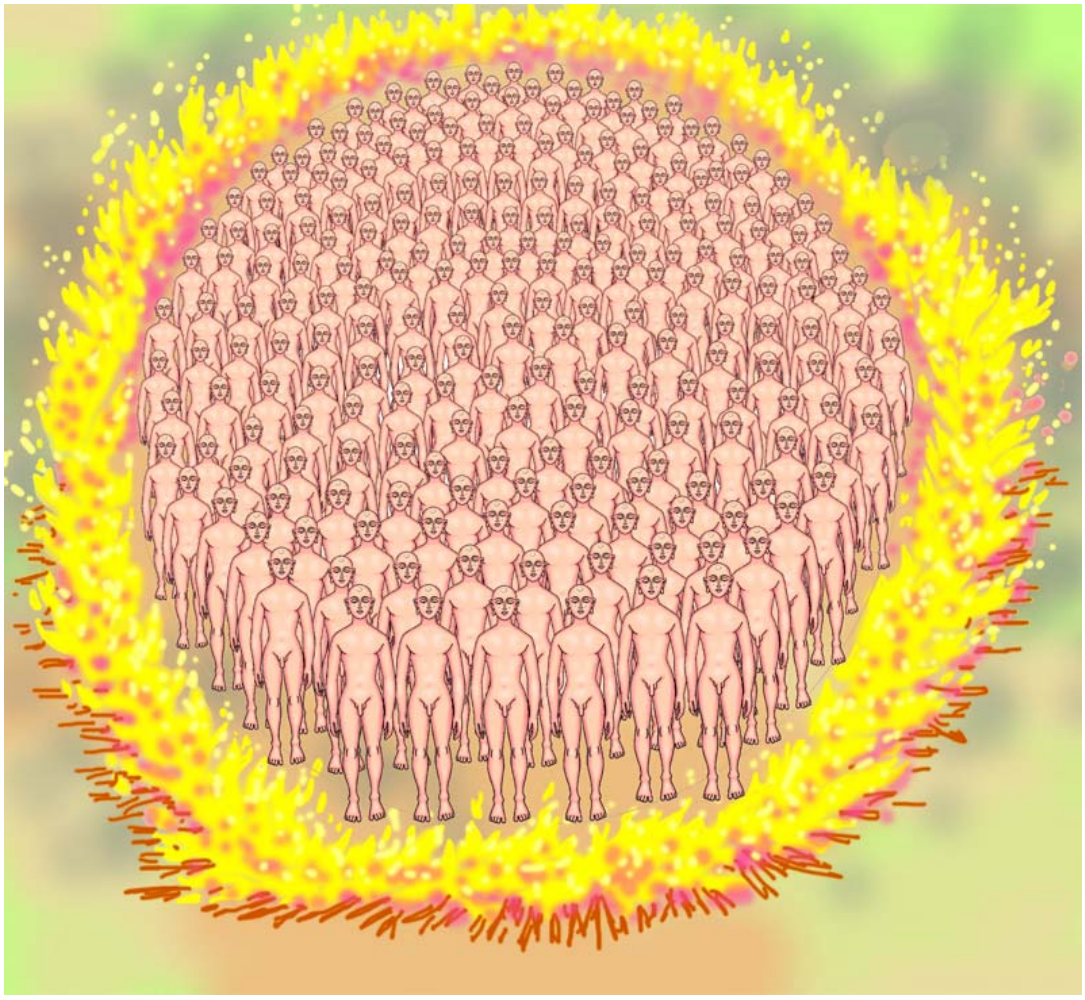

700 मुनिवरों पर बलिराजा द्वारा कराया गया उपसर्ग

उस समय विष्णुकुमार मुनिके अवधिज्ञानी गुरु मिथिला नगरीमें थे। उन्हें अवधिज्ञानसे यह उपसर्ग ज्ञात हो गया। 'रत्नत्रय जयवंत रहे'की वात्सल्य भावनासे युक्त हो सहज ही बोल उठे, कि हा! आज अकम्पनाचार्य आदि सात सौ मुनियोंपर अभूतपूर्व दारुण उपसर्ग हो रहा है। उस समय उनके पास पुष्पदंत नामका क्षुल्लक बैठा था। गुरुके मुखसे उक्त दयार्द्र वचन सुन उसने बड़े सम्भ्रमके साथ पूछा, कि हे नाथ! वह उपसर्ग कहाँ हो रहा है? उसके उत्तरमें गुरुने स्पष्ट कहा, कि हस्तिनापुरमें। क्षुल्लकने पुनः कहा, कि हे नाथ! यह उपसर्ग किससे दूर हो सकता है? उसके उत्तरमें गुरुने कहा, कि जिसे विक्रिया ऋद्धि प्राप्त है तथा जो इन्द्रको भी घौंस दिखानेमें समर्थ

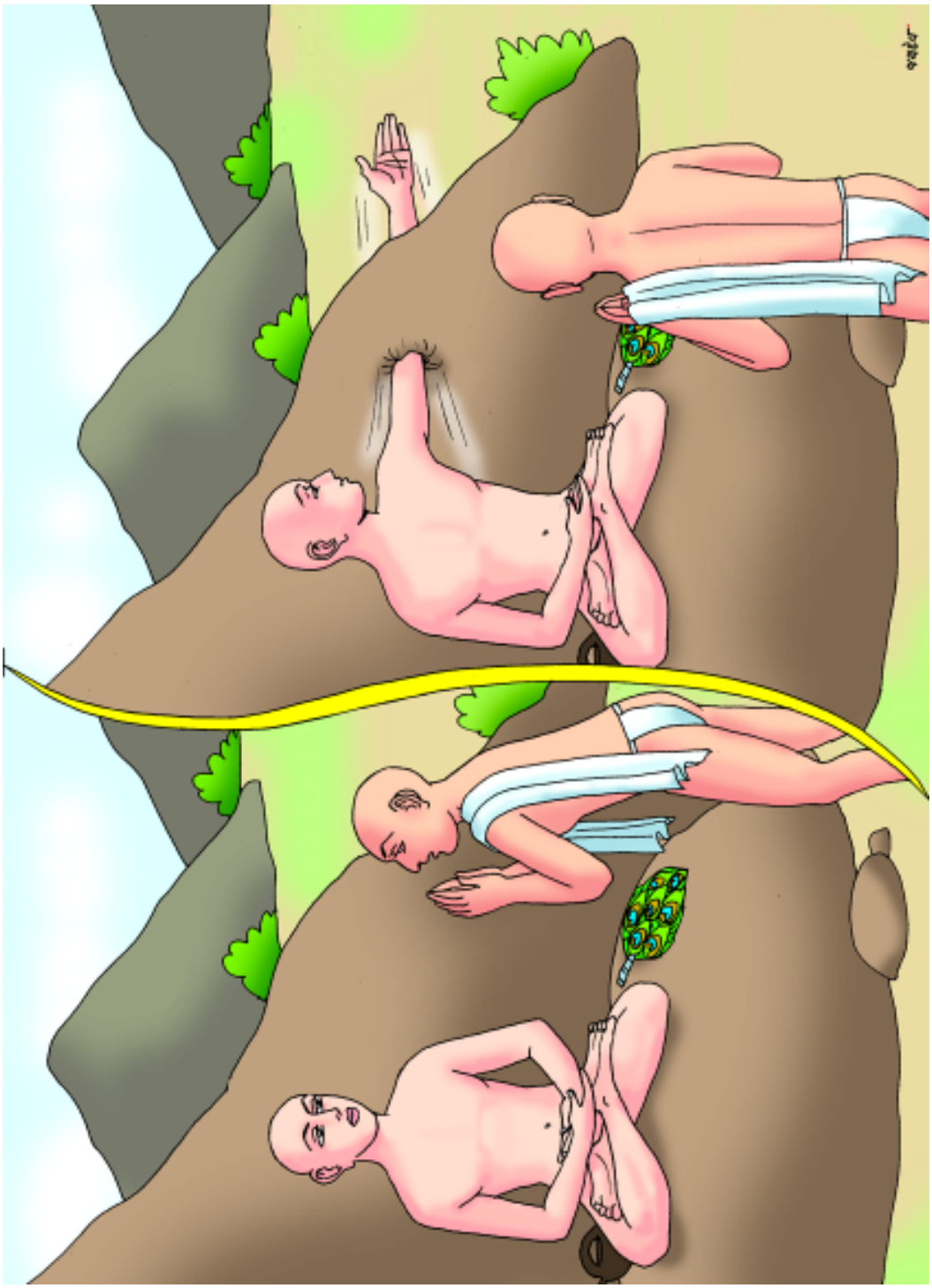

पुष्पदंत क्षुल्लक द्वारा विष्णुकुमार मुनिराजजी 'स्वयंको विक्रिया ऋद्धि प्राप्त हुई' ऐसा जान ऋद्धिका निश्चय करते हुए

है—ऐसे विष्णुकुमार मुनिसे यह उपसर्ग दूर हो सकता है। क्षुल्लक पुष्पदंतने उसी समय जाकर विष्णुकुमार मुनिसे यह समाचार कहा। तब उन्होंने 'विक्रिया ऋद्धि प्राप्त हुई है या नहीं?' इसकी परीक्षा की। उन्होंने परीक्षाके लिए सामने खड़ी पर्वतकी दीवालके आगे अपनी भुजा फैलायी सो वह भुजा पर्वतकी उस दिवालको भेद कर बिना किसी रुकावटके दूर तक इस तरह आगे बढ़ती गयी जिस तरह मानो पानीमें ही बढी जा रही हो।

तदनन्तर जिन्हें ऋद्धिकी प्राप्तिका निश्चय हो गया था, जो जिनशासनके स्नेही थे और नम्र मनुष्योंके लिए अत्यन्त प्रिय थे, ऐसे विष्णुकुमार मुनि उसी समय विनयवंत राजा पद्मके पास जाकर बोले, कि हे पद्मराज! राज्य पाते ही तुमने यह क्या कार्य प्रारम्भ कर रखा? ऐसा कार्य तो रघुवंशियों द्वारा पृथ्वी पर कभी हुआ ही नहीं। यदि कोई दुष्टजन तपस्वीजनों पर उपसर्ग करता है, तो राजाको उसे दूर करना चाहिए। फिर राजासे ही इस उपसर्गकी प्रवृत्ति क्यों हो रही है? हे राजन्! जलती हुई अग्नि कितनी ही महान् क्यों न हो अन्तमें जलके द्वारा शान्त कर दी जाती है, फिर यदि जलसे ही अग्नि उठने व दुराचारीयोंके दमनसे लगे तो अन्य किस पदार्थसे क्या उसकी शान्ति हो सकती है? निश्चयसे ऐश्वर्य, आज्ञारूप फलसे सहित है अर्थात् ऐश्वर्यका फल आज्ञा है और दुराचारीयोंका दमन करना है। यदि ईश्वर–राजा इस क्रियासे शून्य है—दुष्टोंका दमन करनेमें समर्थ नहीं है, तो फिर ऐसे ईश्वरको स्थाणु–ठूँठ भी कहा है अर्थात् वह नाममात्रका ईश्वर है।

इसलिए पशु तुल्य बलिको इस दुष्कार्यसे शीघ्र ही दूर करो। मित्र और शत्रुओंपर समान भाव रखनेवाले मुनियोंपर बलिका यह द्वेष क्या है? शीतल स्वभावके धारक साधुको सन्ताप पहुँचाना शान्तिके लिए नहीं है, क्योंकि जिस प्रकार अधिक तपाया हुआ पानी विकृत होकर जला ही देता है। उसी प्रकार (लोकदृष्टिसे) दुःखी किया हुआ साधु—यदि पुरुषार्थकी कमजोरीसे विकृत हो जाय, तो विकृत होकर जला ही देता है—शाप आदिसे नष्ट कर देता है। जो धीर-वीर हैं, जिनकी सामर्थ्य छिपी हुई है और जिन्होंने अपने शरीरको अच्छी तरह वश कर लिया है—ऐसे साधु भी कदाचित् पुरुषार्थकी मंदतामें अग्निके समान दाहक हो जाते हैं। इसलिए हे राजन्! जब तक तुम्हारे ऊपर कोई बड़ा अनिष्ट नहीं आता है, तब तक तुम बलिके इस कुकृत्यके प्रति की जानेवाली अपनी उपेक्षा दूर करो। स्वयं अपने तथा आश्रित रहनेवाले अन्य जनोंके प्रति उपेक्षा न करो।

तदनन्तर राजा पद्मने नम्रीभूत होकर कहा, कि हे नाथ! मैंने बलिके लिए सात दिनका राज्य दे रखा है। इसलिए इस विषयमें मेरा अधिकार नहीं है। हे भगवन्! आप

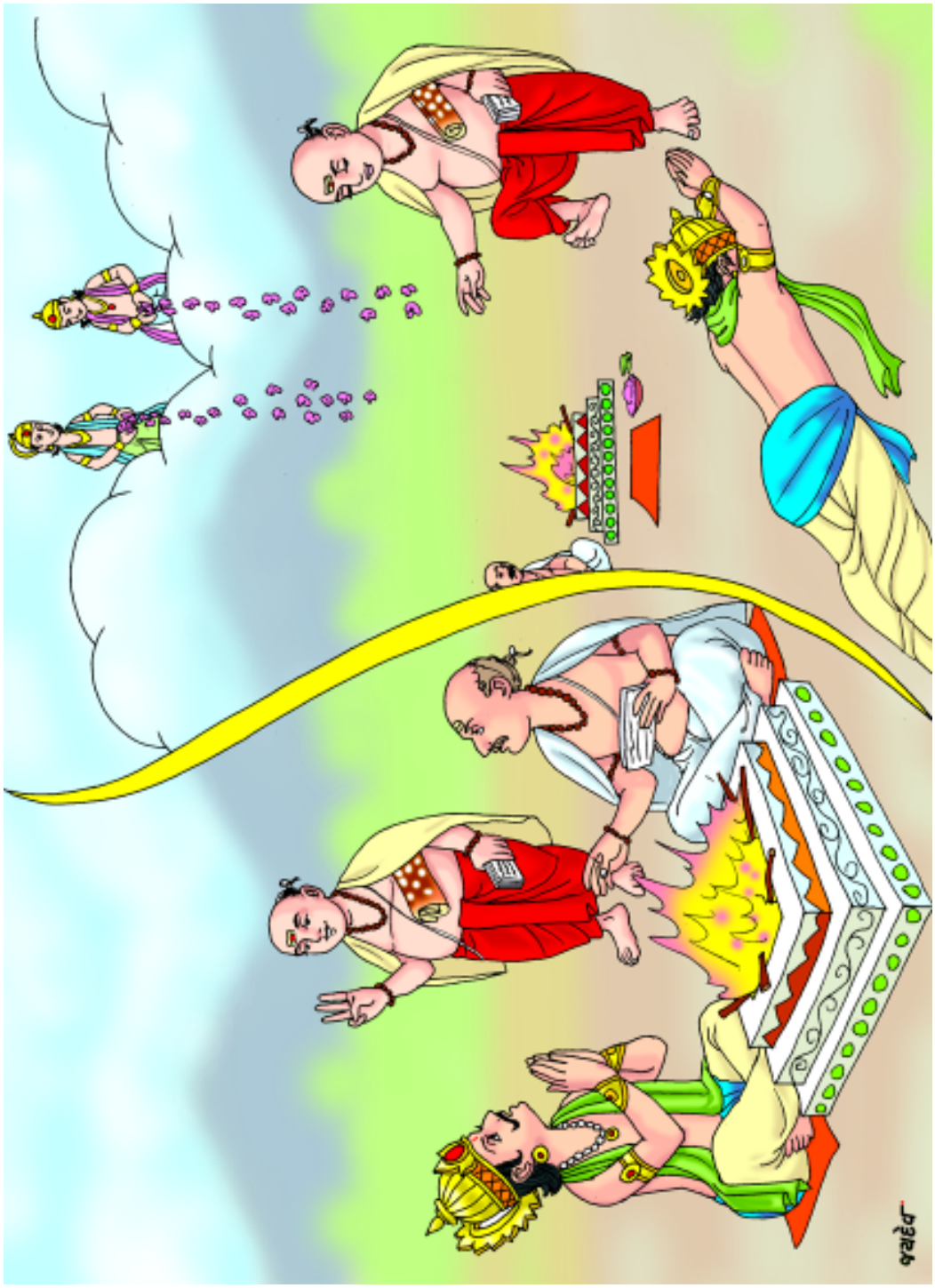

(1) कुतप करते बलिराजाके पास 'बौना ब्राह्मणरूप' धारण कर (2) बलिराजा 3 डग जमीन न दे पानेसे बौना
मुनिराजोंके हेतु 3 डग जमीन मागते हुए विष्णुकुमार ब्राह्मणरूपधारी विष्णुकुमारसे क्षमा मांगते हुए

स्वयं ही जाकर उस पर शासन करें। आपके अखण्ड चातुर्यसे बलि अवश्य ही आपकी बात स्वीकृत करेगा।

राजा पद्मके ऐसा कहनेपर, विष्णुकुमार मुनि[1] बौना ब्राह्मणका रूप लेकर, बलिके पास गये और बोले, कि हे भले आदमी! सात दिनके लिए अधर्मको बढ़ानेवाला, यह निन्दित कार्य क्यों कर रहा है? अरे! एक तपरूप कार्यमें ही लीन रहनेवाले उन मुनियोंने तेरा क्या अनिष्ट कर दिया! जिससे तूने उच्च होकर भी नीचकी तरह उनपर यह कुकृत्य किया। अपने कर्मबन्धसे भयभीत होनेके कारण तपस्वी मन, वचन, कायसे कभी दूसरेका अनिष्ट नहीं करते। इसलिए इस तरह शान्त मुनियोंके विषयमें तुम्हारी यह दुश्चेष्टा उचित नहीं है। यदि शान्ति चाहते हो तो शीघ्र ही प्रमादजन्य उपसर्गका संकोच करो।

तदनन्तर बलिने कहा, कि यदि ये मुनि मेरे राज्यसे चले जाते हैं, तो उपसर्ग दूर हो सकता है, अन्यथा उपसर्ग ज्यों का त्यों बना रहेगा। इसके उत्तरमें विष्णुकुमार मुनिने कहा, कि ये सब आत्मध्यानमें लीन हैं, इसलिए यहाँसे एक डग भी नहीं जा सकते। यह अपने शरीरका त्याग भले ही कर देंगे, पर ध्यान-अवस्थाका उल्लंघन नहीं कर सकते। अतः उन मुनियोंके ठहरनेके लिए मुझे तीन डग भूमि देना स्वीकृत करो। तुम स्वयम् अत्यन्त कठोर न बनो। मैंने कभी किसीसे याचना नहीं की, फिर भी इन मुनियोंके ठहरनेके निमित्त तुमसे तीन डग भूमिकी याचना करता हूँ। अतः मेरी बात स्वीकृत करो। विष्णुकुमारकी बात स्वीकृत करते हुए बलिने कहा, कि यदि इस सीमाके बाहर एक डगका भी उल्लंघन करोगे तो दण्डनीय होंगे। इसमें मेरा अपराध नहीं है; क्योंकि लोकमें मनुष्य तभी आपत्तिसे युक्त होता है; जब वह अपने वचनसे च्युत हो जाता है। अपने वचनका पालन करनेवाला मनुष्य लोकमें कभी आपत्तियुक्त नहीं होता।

तदनन्तर जो कपट-व्यवहार करनेमें तत्पर था, शिक्षा—सच्ची समझ—करनेके लिए अयोग्य था, कुटिल था और साँपके समान दुष्ट स्वभावका धारक था, ऐसे उस बलिको वश करनेके लिए विष्णुकुमार उद्यत हुए। 'अरे पापी! देख, मैं तीन डग भूमिको नापता

---

१. प्रथमानुयोगमें कोई धर्मबुद्धिसे अनुचित कार्य करे उसकी भी प्रशंसा करते हैं। जैसे-विष्णुकुमारने मुनियोंका उपसर्ग दूर किया सो धर्मानुरागसे किया; परन्तु मुनिपद छोड़कर यह कार्य करना योग्य नहीं था; क्योंकि ऐसा कार्य तो गृहस्थधर्ममें सम्भव है और गृहस्थधर्मसे मुनिधर्म ऊँचा है; सो ऊँचा धर्म छोड़कर नीचा धर्म अंगीकार किया वह अयोग्य है; परन्तु वात्सल्य अंगकी प्रधानतासे विष्णुकुमारजीकी प्रशंसा की है। इस छलसे औरोंको ऊँचा धर्म छोड़कर नीचा धर्म अंगीकार करना योग्य नहीं है। —मोक्षमार्गप्रकाशक

हूँ' यह कहते हुए उन्होंने अपने शरीरको इतना बड़ा बना लिया, कि वह ज्योतिषपटलको छूने लगा। उन्होंने एक डग मेरु पर रखा, दूसरा मानुषोत्तर पर रखा, तीसरेका अवकाश न मिलनेसे आकाशमें ही घूमता रहा।

उस समय विष्णुकुमारके प्रभावसे तीनों लोकोंमें क्षोभ मच गया। किम्पुरुष आदि देव 'क्या है? क्या है? ऐसा पूछने लगे। वीणा-बांसुरी आदि बजानेवाले, कोमल गीतोंके गायक गन्धर्वदेव अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ उन मुनिराजके समीप मनोहर गीत गाने लगे। लाल-लाल तलुवेसे सहित एवं आकाशमें स्वच्छंदतासे धूमता हुआ उनका पैर, अत्यधिक सुशोभित हो रहा था और संगीतके लिए इकट्ठी हुई किन्नरादि देवोंकी स्त्रियोंका, अपना-अपना मुख-कमल देखनेके लिए उसके नख दर्पणके समान जान पड़ते थे।

'हे विष्णो! हे प्रभो! मनके क्षोभको दूर करो। आपके तपके प्रभावसे आज तीनों लोक चल-विचल हो उठा है'। इस प्रकार मधुर गीतोंके साथ वीणा बजानेवाले देवों, धीर-वीर विद्याधरों तथा सिद्धान्त शास्त्रकी गाथाओंको गानेवाले एवं बहुत ऊँचे आकाशमें विचरण करनेवाले चारण ऋद्धिधारी मुनियोंने जब उन्हें शान्त किया। तब वे धीरे-धीरे अपनी विक्रियाको संकोच कर, उस तरह स्वभावस्थ हो गये—जिस तरह कि उत्पादके शान्त होने पर सूर्य स्वभावस्थ हो जाता है–अपने मूल रूपमें आ जाता है।

उस समय देवोंने शीघ्र ही मुनियोंका उपसर्ग दूर कर, दुष्ट बलिको बांध लिया और उसे दण्डित कर देशसे दूर कर दिया। इस प्रकार उपसर्ग दूर करनेसे जिनशासनके प्रति वत्सलता प्रकट करते हुए, विष्णुकुमार मुनिने सीधे गुरुके पास जाकर प्रायश्चित्त द्वारा विक्रियाका शल्य छोड़ा। स्वामी विष्णुकुमार, घोर तपश्चरण कर तथा घातिया कर्मोंका क्षय कर केवली हुए और विहार कर अन्तमें मोक्षको प्राप्त हुए।

धीर-वीर अकम्पनाचार्य आदि ७०० मुनिराज तथा वात्सल्य गुणधारी विष्णुकुमार मुनिराजको कोटि-कोटि वंदना।

मुनिभगवंत श्री सुकुमारजी (सुकुमालजी)

धन्य-धन्य सुकुमाल महामुनि, कैसे धीरज धारी;
एक स्यालिनी जुग बच्चा-जुत, पांव भख्यो दुखकारी.
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी;
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु-महोत्सव भारी.

इसी आर्यखण्डके मध्यमें नाभिके समान नगर, पट्टन, खेट, पर्वत, ग्राम और वनोपवन आदिसे पूरित, दानी धर्मात्मा, चतुर, विद्वान, सब प्रकारके श्रावक, मुनिराज आदि सज्जनोंसे परिपूर्ण अंग(बिहार) नामक देश सुशोभित हो रहा था। उस अंग देशमें ऊँचे ऊँचे कोट, दरवाजे, खाई आदिसे संपन्न अयोध्याके समान धर्मात्मा विद्वानों द्वारा सुशोभित, दानवीरों, योद्धाओं, जिनमें बड़े-बड़े महोत्सव हों—ऐसे जिनमंदिरोंसे सुसज्जित चम्पा नामक नगरी है।

इस चम्पानगरीका जनताके पुण्यसे प्रतापवान, धर्मात्मा विवेकी चतुर और सच्चरित्र चन्द्रवाहन नामक राजा था। जिसके प्राणोंसे भी प्यारी, समस्त पुण्यशाली लक्षणोंसे सुशोभित, लक्ष्मीके समान श्रेष्ठ लक्ष्मीवती नामक रानी थी। इस राजाके यहाँ नागशर्मा नामक पुरोहित था। जो कुशास्त्रोंका ज्ञाता, क्रूर हृदयी, जैनधर्मका द्रोही, महान मिथ्यादृष्टि था। जिसके रूपवती त्रिदेवी नामक स्त्री थी और इनके लक्ष्मीके समान सुन्दर नागश्री (सुकुमालका पूर्व भव) नामक पुत्री हुई। यह नागश्री विवेक, रूप और सुन्दरता, ज्ञान विज्ञान आदि गुणोंसे संयुक्त थी। जो देवकन्याके समान सुशोभित थी।

एक दिन वह नागश्री अनेक ब्राह्मण कन्याओंके साथ क्रीड़ा करती हुई नगरके बाहरवाले उद्यानमें बने नागमन्दिरमें मूढ़बुद्धिसे पुण्य-लाभकी कामना करती हुई नाग देवताओंको पूजने गई। उस उद्यानमें, अनेक ऋद्धिधारी, विद्वान, महाज्ञानरूपी समुद्रके पारगामी, संसारी जीवोंके कल्याणमें तत्पर, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र तथा तपरूप धनवाले, ध्यान और अध्ययनमें लीन, प्रासुक (निर्जीव) स्थान पर बैठे हुए, ऐसे सूर्यमित्र और अग्निभूति नामक दो मुनिराजोंको नागश्रीने किसी पूर्वमें बांधे पुण्यकर्मके उदयसे देखा।

नागपूजा करने आई 'नागश्री' सूर्यमित्र व अग्निभूति मुनिराजको देख उन्हें प्रणाम करती हुई

वह नागपूजा समाप्त कर, मुनि महाराजोंके पास जा कर, उनके चरणकमलोंको भोलेपनसे ही प्रणाम कर, उनके निकट जा बैठी। श्री सूर्यमित्र मुनिराजने अपने ज्ञानसे, उस नागश्रीके पूर्व जन्मके वृत्तांत एवं होनेवाली सद्गतिको जानकर उसको सम्बोधन करके कहा, कि हे पुत्री! स्वर्गके कारणभूत सम्यग्दर्शन सह तू गृहस्थधर्मको धारण कर, कि जिससे तू इस भवमें भी सुखी होगी और परलोकमें भी तेरे महान अभ्युदय होगा क्योंकि धर्मसे ही तीन लोकमें सारे सुख मिलते हैं और धर्मात्माओंके सैंकडों मनोरथ अपने आप ही सिद्ध हो जाते हैं।

सम्यग्दर्शनपूर्वक मद्य, मांस, मधु और पांच उदंबर फलोंके त्यागसे; जूआ, चोरी आदि सात व्यसनोंके छोड़नेसे; अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्याणुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत और परिग्रहप्रमाणाणुव्रत इस प्रकार इन पांच अणुव्रतोंके धारण करनेसे गृहस्थका धर्म बनता है। आत्मदर्शनरूप सम्यग्दर्शनपूर्वक व्रती धर्मात्मा मरकर स्वर्गमें ही जाता है और (मिथ्यादृष्टि)अव्रती हिंसादि महापापोंसे नरक गति या पशुगतिमें रुलता है। इसलिए जो प्राणी अपना कल्याण चाहते हैं, उन्हें चाहिए, कि वे सम्यग्दर्शनपूर्वक अव्रती न रहकर दुराचारोंको छोड़कर उक्त व्रत ग्रहण करें। श्रेष्ठ सम्यग्दर्शनरूप आचरणका नाम ही वास्तवमें धर्म है। सूर्यमित्र मुनिराजके मुँहसे यह उपदेश सुन नागश्री बोली, कि हे स्वामिन्! वे कौनसे व्रत हैं? जिन्हें सुख चाहनेवाले मनुष्य पालते हैं? नागश्रीका यह वाक्य सुन वे मुनिराज बोले, कि हे पुत्री! सच्चे देव-गुरु-शास्त्रकी श्रद्धा करना व कुदेवादिकी श्रद्धा छोड़ना वह सम्यग्दर्शन है तथा अब तेरे कल्याणके लिए मैं उन व्रतोंका स्वरूप बतलाता हूँ; जिसे तू सुन।

इस भाँति मुनि भगवंतने सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञान आदि सह अहिंसादि व्रतोंका व उसके फलोंका स्वरूप तथा इन सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र बिना जीव कैसे कैसे पाप करता है?–व कैसे कैसे दुःख भोगता है? उन सबको विस्तारसे समझाया।

हे पुत्री! ये सम्यग्दर्शनपूर्वक पांच अणुव्रत दोनों लोकोंके लिए कल्याणकारी है। इनसे यहाँ सुख और परलोकमें स्वर्गादि सुख मिलता है, सो तू इन्हें प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण कर। ये पाँच अणुव्रत सुख और गुणोंके निधान हैं। इनको श्रेष्ठ आचरणके द्वारा जो पालते हैं, वे अच्युत स्वर्ग तकके सुख भोगकर मानवगतिको प्राप्त कर रत्नत्रयधारी हो मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। इस प्रकार जानकर तथा मानकर जिनेन्द्र भगवान द्वारा कहे, स्वर्ग, मोक्ष सुखको प्राप्त करानेवाले इन सारभूत व्रतोंको पालना चाहिए। ये ही व्रत तीन लोकमें सुखके दाता और धर्मरूप वृक्षके मूल हैं। अपना हित चाहनेवाले प्राणियोंको चाहिए, कि चंचल और

प्रतिसमय घटनेवाली आयुमें इन व्रतोंके बिना एक क्षण भी न जाने देना चाहिये।

कन्या नागश्रीने मुनिराजके चरणकमलोंको नमस्कार कर, बड़ी श्रद्धाके साथ मुनिराजके उपदेशसे प्रभावित हो पाँचों अणुव्रत धारण कर लिए। भावी घटनाओंके ज्ञानरूप अवधिज्ञानके बलसे मुनिराजने जब नागश्री व्रत लेकर जाने लगी; तब उसे यह शिक्षा दी, कि बेटी! तेरा पिता तुझसे इन व्रतोंको छूड़ानेका पूर्ण प्रयत्न करेगा; परन्तु तू देवोंको भी दुर्लभ इन व्रतोंको कभी मत छोड़ना, क्योंकि व्रतोंके आचरणरूपी धर्मसे स्वर्ग और मोक्षकी संपदाएँ मिलती हैं और ख्याति, कीर्ति आदि सब अपने इच्छाओंके अनुसार प्राप्त हो जाते हैं। जो लोग व्रत लेकर उसका भंग करते हैं, वे नीच निंदाके अलावा सैंकड़ों संकट भोगते हुए परलोकमें भी दुर्गतिमें रुलते फिरते हैं। इसलिए अगर तू अपने पिताके आग्रहसे व्रतोंको धारण करनेमें कदाचित् असमर्थ भी हो जाय, तो तू मेरे इन व्रतोंको मुझे आकर सौंप जाना। मुझे मेरे व्रत वापिस सौंपनेके पहले इनको भंग मत करना। नागश्रीने मुनिराजकी यह शिक्षा सुनकर कहा, कि हे जगतके कल्याण करनेवाले तात! आपने जैसा कहा है, वैसा ही होगा।

यह कहकर, और मुनिराजको नमस्कार करके, वह अपने घर चली गई, किन्तु नागश्रीके साथ जो अन्य लड़कियाँ गई थीं, उन्होंने पहले ही आकर नागश्रीके पिता नागशर्मा पुरोहितसे यह बात कह दी थी, कि नागश्रीने दिगंबर जैन साधुओंके चरणकमलोंको नमस्कार कर, उनसे कुछ जैनधर्मके व्रत ले लिए हैं। तब नागशर्मा क्रोधरूप अग्निसे प्रज्वलित हो उठा और अपनी पुत्री नागश्रीकी दुर्वचनों सह कहा, कि बेटी! तूने भोलेपनसे आज यह बहुत ही गलत काम किया है। जो नग्न मुनिको नमस्कार किया तथा उससे व्रत भी ले डाले। तुझे अपने कुलमें चले आये वेद-पुराणोंमें कहे हुए यज्ञ, कर्मादि धर्मका ही पालना चाहिए, कि जो ब्राह्मणोंके लिए उचित है। जिनेन्द्र द्वारा कहा हुआ, जीव दयामयी धर्म, व्रतादि पालना; ब्राह्मणोंके कुलमें योग्य नहीं है। इसलिए तूने जो ये व्रत लिये हैं, इन्हें छोड़ दे। ये व्रत उनके लिए स्वर्ग, मोक्षको देनेवाले हैं, अपने लिए कभी नहीं!

नागश्रीने पिताके ये वचन सुनकर कहा, कि पिताजी! लिए हुए व्रतोंको तो दुर्बुद्धि लोग ही छोड़ते हैं, क्योंकि व्रत लेकर छोड़नेसे जगतमें नीचता, निन्दा और महापाप होता है और परलोकमें सदैव दुर्गतियोंमें भ्रमण करना पड़ता है। इसलिए स्वर्ग-मोक्षके करनेवाले इन अंगीकार किये हुए सारभूत व्रतोंको मैं अपने कल्याणकी दृष्टिसे नहीं छोड़ूँगी। उसके पिता नागशर्माने अपनी पुत्रीके ऐसे वचन सुन क्रोधसे प्रज्वलित हो कहा, कि या तो इन

व्रतोंको छोड़ दे, अन्यथा मेरे घरसे बाहर निकल जा। नागश्रीने अपने पिताके इस दुराग्रहको जानकर चित्तमें अत्यन्त दुःखी हो कहा, कि पिताजी! मेरी एक बात सुनिये। वह यह है, कि मैं व्रत लेकर आने लगी, तब मुनिराजने मुझसे कहा था, कि जो ये व्रत मैंने तुझे दिये हैं; उन्हें तेरा पिता तुझसे छुडवायेगा। यदि ऐसा ही हो तो, जो व्रत तू मुझसे ले जा रही है, वे मुझे वापस सौंप जाना। अतः यदि आप ये व्रत मुझसे छुड़ाना ही चाहते हैं, तो उनके व्रत उन्हें वापस सौंप देने दीजिये।

पुत्रीके ये वचन सुन पिता नागशर्माने कहा, कि यह ठीक है, मुझे स्वीकार है यह कहते हुए मुनिराजके वचनोंकी निंदा करता हुआ, पुत्रीको साथ लेकर व्रतोंको वापस देनेके लिए घरसे खुद भी चल दिया। जब पिता-पुत्री रास्तेमें चले जा रहे थे; तब रास्तेमें जाते समय हिंसक, असत्य बोलनेवाले, चोरी करनेवाले, अब्रह्मसेवन करनेवाले व परिग्रह लोभी विविध व्यक्तियोंको राजाकी ओरसे दंड देनेके प्रसंग देख नागश्रीने पिताजीसे उन एक-एक प्रसंग पर बताया, कि मुनि महाराजने जो व्रत मुझे दिया उसमें क्या गलत किया? उससे तो मेरा जीवन ही विविध प्रकारके दंडोंके दुःखसे बच जाता है। ऐसा उसमें लाभ बताते हुए उसे प्राणांत तक नहीं छोड़ने हेतु पिताजीसे प्रत्येक प्रसंग पर निवेदन किया। इस पर पिताजी प्रत्येक प्रसंग पर एक-एक व्रत रख लेनेकी अनुमति दे देते हैं। अन्तमें जब कोई भी व्रत मुनि महाराजको वापस देनेको ही न रहे, तब नागश्रीके पिताने कहा कि—उस यतिको शीघ्र जाकर फटकारना चाहिए। इसलिए उस दिगम्बर यतिकी भर्त्सना (फटकारने)के लिए हम अवश्य वहाँ चलेंगे। यह कहकर उस स्थान पर वे जा पहुँचे, जहाँ वे मुनिराज विराजमान थे।

दूरसे ही खड़े रहकर, उसने मुनिराजको कठोर और निंदनीय वचन कहना प्रारंभ किया और कहा, कि हे दिगंबर! तुमने मेरी पुत्रीको जो ये पाँच प्रकारके व्रत दिये हैं। ये ब्रह्मा, विष्णु और महेशके द्वारा कहे हुए शास्त्रसे विपरीत हैं, सो किस प्रकार दे दिये? ये ब्राह्मणकी लड़की है, उसके लिए तुम्हारे द्वारा दिये हुए व्रत सर्वथा अयोग्य हैं। तुमको वेद शास्त्रका भी विचार करना चाहिए। यह सुनकर भविष्य ज्ञाता योगीराजने मधुर स्वरसे द्विज जातियोंके हितार्थ कहा, कि मेरी ही पुत्रीको जो धर्मके बीज और दयाके मूल हैं, ऐसे ये सम्यग्दर्शन सह पांच व्रत दिये हैं। इसमें तुम्हारा क्या बिगड़ गया? मुनिराजके ये वचन सुन क्रोधसे ज्वलित हो नागशर्माने कहा, कि नागश्री, तुम्हारी पुत्री कैसे हो सकती है? मुनिराजने उत्तर दिया, कि द्विज! यह नागश्री अवश्यमेव मेरी पुत्री है, इसमें कोई संदेह नहीं, मैं असत्य नहीं बोलता हूँ। नागश्री साम्यभाव धारण कर व्रतोंके पालनेमें तत्पर

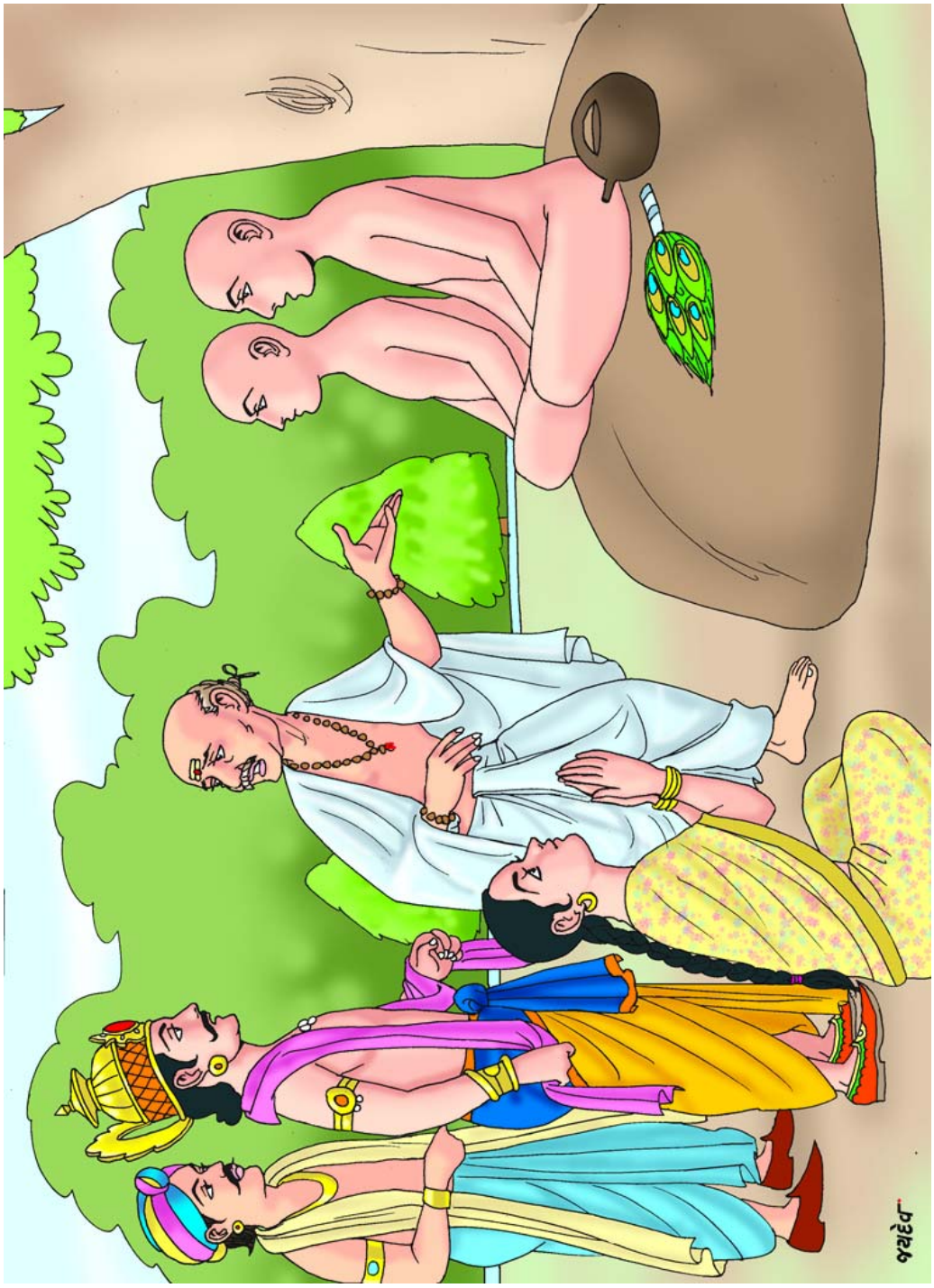

सूर्यमित्र मुनिराज द्वारा 'नागश्री'को अपनी पुत्री बताने हेतु' नागशर्मा पुरोहित द्वारा राजा मंत्रीको शिकायत करते हुए

हो मुनिराजके चरण कमलोंको प्रणाम कर उनके निकट बैठ गई।

मुनिराजके वचन सुन नागशर्मा राजाके पास न्याय मांगने गया। नागशर्माने अत्यन्त क्रोधसे राजाको प्रार्थना की और पुकारते हुए कहा, कि महाराज! एक दिगंबर जैन साधु मेरी नागश्री पुत्रीको अपनी पुत्री बतलाकर असत्य तथा बलपूर्वक मुझसे छीन रहा है। राजाकी सभाके सभी सदस्योंको महान आश्चर्य हुआ। विचार करनेमें महा चतुर राजाने सोचा, कि चाहे सुमेरुपर्वत चलायमान हो जाय, या अग्नि शीतल हो जाय, किन्तु योगीजन कभी झूठ नहीं बोलते। निर्ग्रंथ साधुओंने परिग्रह तकका त्याग कर दिया, उनको मिथ्या भाषणसे क्या प्रयोजन? किंतु यह बात भी प्रसिद्ध है, कि नागश्री नागशर्मा ब्राह्मणकी ही पुत्री है। ऐसा विचार कर राजा चन्द्रवाहन मुनिराजके निकट गया। कितने ही लोग आश्चर्यकारी विवाद सुनने और कितने ही तमाशा देखनेके लिए नगरके बाहरवाले उद्यानमें पहुँचकर दूरसे यह सब देखते रहे।

राजाने सूर्यमित्र मुनिराजको देख नमस्कार किया और बैठकर मुनिराजसे प्रश्न किया, कि स्वामिन्! सत्यव्रतधारी मुनिराजके मुखसे निकले वचन कभी अन्यथा नहीं होते, यह बात मैं अच्छी तरह जानता होने पर भी, चित्तमें उत्पन्न संदेहको दूर करनेके लिए आपसे पूछना चाहता हूँ, कि 'यह नागश्री जो आपके चरणोंके निकट बैठी है' वह किसकी पुत्री है? मुनिराजने कहा कि : 'मैं सत्य कहता हूँ, कि यह मेरी पुत्री है'। नागशर्माने लाल आँखें कर कहा, कि राजन्! अत्यन्त भक्तिपूर्वक नागदेवताकी आराधना और पूजाके फलसे आप ही के नगरमें मैंने अपनी भार्यासे यह पुत्री प्राप्त की है। क्या अन्य नगरवासी इस बातको नहीं जानते हैं? यह साधु तो ब्रह्मचारी है, उसके पुत्रीका क्या काम?

इसके बाद मुनिराज बोले, कि राजन्! यदि यह कन्या इसीकी है तो क्या इसने इसे व्याकरणादि शास्त्र पढ़ाया है? क्योंकि पठन, पाठन और शास्त्रज्ञानसे अज्ञानकी हानी होती है। नागशर्माने कहा, कि मैंने तो अभी तक कुछ भी नहीं पढ़ाया। तब योगीराज बोले, कि तब यह तुम्हारी पुत्री कैसे हो गई? फिर नागशर्मा बोला, कि यदि आपने इसे पढ़ाया है, तो बतलाईये क्या पढ़ाया है? तब फिर योगिराज बोले, कि मैंने अनेक शास्त्ररूपी समुद्रके पार इसे पहुँचा दिया है और मेरे इस कथनमें रंचमात्र संदेह नहीं है।

राजा चन्द्रवाहनने भी आश्चर्य सहित हो मुनिराजको नमस्कार कर कहा, कि स्वामिन्! यदि आपने इस नागश्री कन्याको पढ़ाया है, तो इससे शास्त्र पठनकी परीक्षा दिलवाइये। जिससे यथार्थ बात मालूम पड़े? राजाकी बात सुन योगीराजने अपनी अद्भुतवाणीसे कहा,

कि राजन्! इसी समय इसके द्वारा समस्त शास्त्रोंकी परीक्षा दिलवाता हूँ। मुनिराजने भरी सभामें—जिसमें बड़े-बड़े विद्वान भी उपस्थित थे—कन्या नागश्रीको आशीर्वाद देते हुए अपनी दिव्य वाणीसे कहा, कि वायुभूते! मुझ सूर्यमित्रने राजगृह नामक नगरमें तुझे जो बहुतसे शास्त्र पढ़ाये थे; उन सारे शास्त्रोंकी विद्वानो और राजाको इस समय परीक्षा दो, जिससे कि सबका संदेह दूर हो जाये।

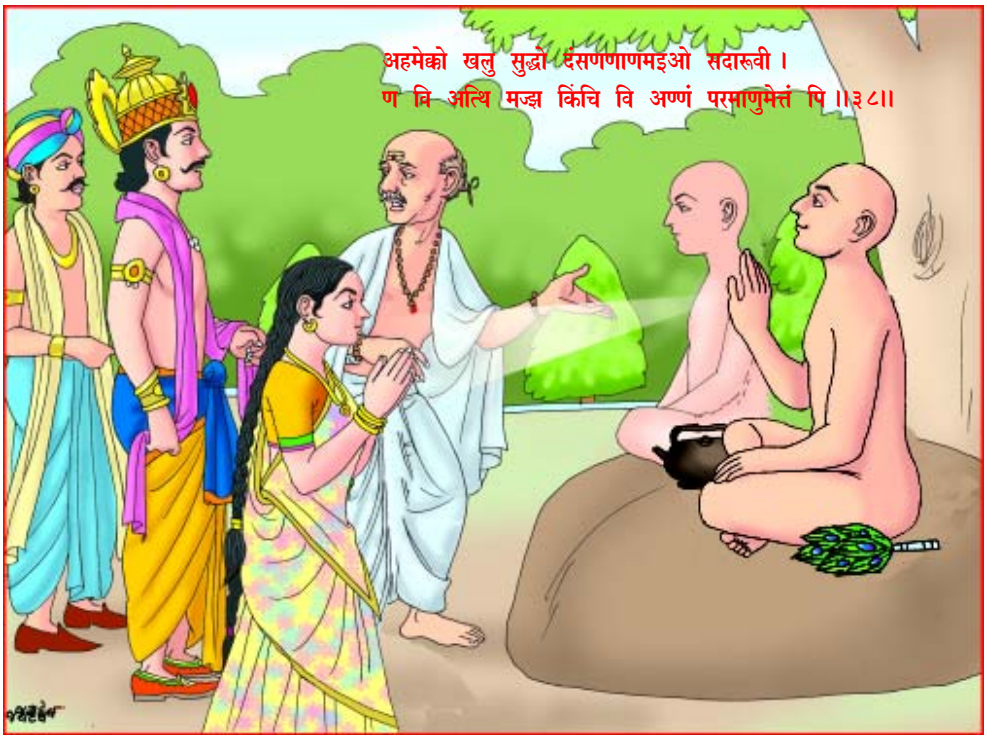

मुनिराज सूर्यमित्रके कहने पर शास्त्रोंका पाठ पढती नागश्री

इतना कहते ही नागश्री अपनी दिव्य वाणीसे, सरस्वतीकी तरह अनेक शास्त्रोंका पाठ करने लगी और जो भी विद्वान प्रश्न करता था, उसका युक्ति प्रमाणपूर्वक ठीक-ठीक उत्तर देने लगी। इस शास्त्र परीक्षासे राजाको उस समय बड़ा भारी आश्चर्य हुआ। इसके बाद चंद्रवाहन राजाने मुनिराजको नमस्कार करके कहा, कि स्वामिन्! यह नागश्री आपकी ही लड़की है। इस ब्राह्मणकी नहीं, परन्तु मेरे तथा इन उपस्थित अन्य लोगोंके मनमें सन्देह अवश्य है, कि आपने नागश्रीसे तो परीक्षा दिलाई और नागश्रीको 'वायुभूति' कहकर संबोधन किया सो क्या कारण? इसमें सभीको बड़ा भारी आश्चर्य है।

राजाके इस प्रश्न पर सूर्यमित्र मुनिराजने उत्तर दिया, कि राजन्! पूर्वभवमें यह जो

इस समय नागश्री है, सो वायुभूति (सुकुमालका पूर्व भव नं. ७) ही था। यह सुनकर राजाने मुनिराजको नमस्कार कर सविनय कहा, कि भगवन्! कृपा करके आपको नागश्रीके पूर्वभवोंका वर्णन करनेका नम्र निवेदन है। योगीराज बोले, कि राजन्! अन्य उपस्थित भव्यजीवोंके साथ अपने मनको वशीभूत करके वैराग्य पैदा करनेवाली नागश्रीकी कथा मैं कहता हूँ वह सब लोग सुनें।

इसी भरतक्षेत्रके वत्सदेशमें कौशांबी नामक नगरी है। वहाँ पूर्वमें अतिबल राजा राज्य करता था। उसके मनोहारी नामकी प्रिय पट्टरानी थी और सोमशर्मा नामक शास्त्रज्ञ ब्राह्मण पुरोहित था। सोमशर्माके काश्यपी नामक स्त्री थी। इनके दो पुत्र थे। बड़ा अग्निभूति और छोटा वायुभूति। इन दोनों पुत्रोंको बाल्यकालमें खूब लाड़ किए, खिलाया, पिलाया, पिताने इनको पढ़ानेका प्रयत्न भी खूब किया, परन्तु ये पढ़े ही नहीं। इन दोनोंका पिता सोमशर्मा मर गया, राजाने अनजानेमें इन दोनों मूर्खोंको ही पुरोहित पद दे दिया। ये दोनों ब्राह्मण पुत्र सुख-पूर्वक रहते हुए काम, भोग सुखोंमें आसक्त हो गये, शास्त्रज्ञानसे तो ये रहित ही थे।

उन्हीं दिनों अनेक देशोंमें भ्रमण करते करते न्यायशास्त्रसंबंधी विवादसे अनेक वादी विद्वानोंका अभिमान चूर करनेवाले विजयचिह्न नामके एक विद्वानने राजाके महल पर यह सूचना चिपका दी, कि जो राजपुरोहित हो वह मुझसे विवाद करे। राजपुरोहितके सिवाय दूसरेको विवाद करनेका अधिकार नहीं। इस सूचनापत्रसे अन्य विद्वानोंने वादपत्र लिया नहीं। तब राजा अतिबलने इन दोनों भाईयोंको बुलाकर यह आज्ञा दी, कि तुम यह वादपत्र लो और विजयचिह्न वादीसे शास्त्रार्थ करो। उन मूर्ख ब्राह्मण पुत्रोंने उस वादपत्रको लेकर फाड़ डाला। तब राजा अतिबलने उनको महामूर्ख समझकर पुरोहितपदसे अलग कर दिया और सौमिल नामक दूसरे ब्राह्मणको राजपुरोहितका पद दे दिया।

वे दोनों मानभंगसे बड़े दुःखी हुए, आजीविका नष्ट हो जानेसे विचारने लगे, कि हमको हमारे पिताजीने पढ़ानेका भारी प्रयत्न किया था परन्तु हम इतने मंदभागी रहे, कि पढ़ न सके, अत्यन्त मूर्ख ही रह गये और कुमार्गगामी भी हो गये। यह विचार कर वे दोनों श्रुतज्ञान प्राप्त करनेको अत्यंत उत्सुक हो गये और शीघ्र ही देशान्तर जाकर पढ़नेका दृढ़ निश्चय किया।

इन दोनोंकी माता काश्यपी इनकी अपने कल्याणके लिए शिक्षाभ्यासके प्रति अत्यंत उत्सुकता देख बोली, कि पुत्रों! राजगृह नगरमें सुबल नामका राजा और उसके सुप्रभा

नामक स्त्री है। उनके जो सूर्यमित्र नामका पुरोहित है। वह मेरा भाई है। वह ज्ञान विज्ञानसे संपन्न और विद्वानोंमें शिरोमणि है; वह तुम्हारा मामा होता है, सो तुम्हारा हितैषी है। अगर तुम्हारी शास्त्राभ्यासके लिए वास्तवमें ही इच्छा है, तो तुमको उसके पास शीघ्र जाकर पढ़ना प्रारंभ कर देना चाहिए। अपनी माताकी बात सुन वे दोनों विद्याके इच्छुक राजगृह नगर पहुँचे और ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ सूर्यमित्रको नमस्कार कर बोले, कि मामा! हमें हमारे पिताजीने पढ़ानेका बड़ा भारी प्रयत्न किया, परन्तु हम मूर्ख ही रहे, खेलकूदमें रहनेसे कुछ भी न पढ़ सके। पिताके मर जाने पर हमारा पद राजाने दूसरेको दे दिया। अब हमको हमारी माताने आपके पास पढ़नेको भेजा है, आप ही हमारा हित करनेवाले हैं। आप हमें पढाईये जिससे हम शास्त्रज्ञ होकर अपने खोये हुए पदको फिरसे प्राप्त कर सकें।

विद्वान सूर्यमित्र पूरोहितने अपने हृदयमें सोचा, कि लाड-प्यारके कारण ये पितासे न पढ़ सके, अगर मैं भी इनको अच्छा भोजन दूँगा, तो ये खेल-कूदमें रह जायेंगे। जिससे ये कुछ पढ़ नहीं सकेंगे और न इनको कार्यकी सिद्धि हो सकेगी। ऐसा विचार सूर्यमित्रने कहा, कि जब मेरे कोई बहिन ही नहीं तो तुम भानजे कहाँसे आये? मेरा तुमसे कोई मामा-भानजेपनका सम्बन्ध नहीं है, फिर भी तुम अन्य ब्राह्मणोंके घरसे भिक्षा मांगकर भोजन करते रहोगे और पढ़ते रहोगे तो मैं तुम्हें पढ़ाऊँगा, अन्यथा नहीं। उन्होंने सूर्यमित्र विद्वानकी बातको स्वीकार कर, पढ़ना प्रारंभ किया और थोड़ेसे समयमें ही प्रमादरहित हो परम आदरसे अनेक शास्त्र सीख लिये और महा विद्वान बन गये।

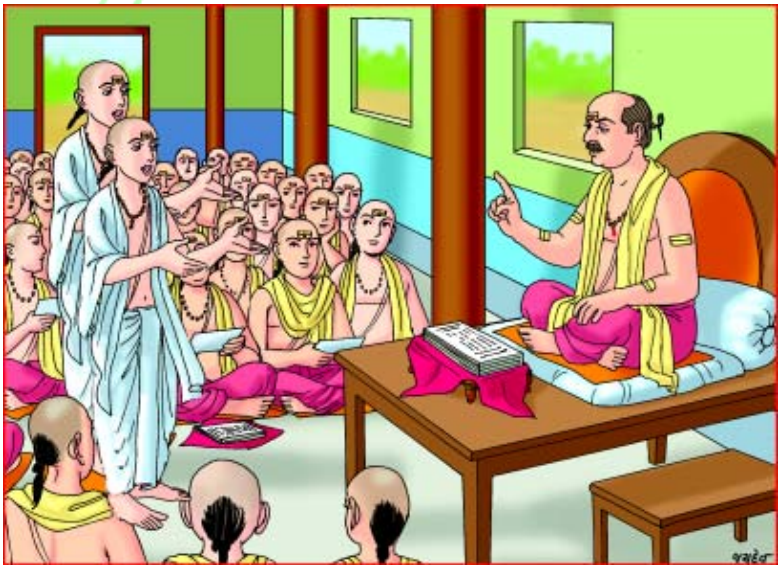

मामा सूर्यमित्रके पास शास्त्रोंका अभ्यास करते अग्निभूति और वायुभूति

जब वे अनेक शास्त्रोंके पारगामी हो गये और अपने घर लौटने लगे तो सूर्यमित्र विद्वानने उनको वस्त्रादिक दे, विदा करते समय कहा, कि मैं तुम्हारा हितैषी मामा ही हूँ। यदि मैं तुम्हारे पिताकी तरह यहाँ भी लाड-प्यार करके अपने ही घरमें भोजनादि कराता तो तुम कभी न पढ़ते। इसलिए मैंने तुमसे कह दिया था, कि मैं तुम्हारा मामा नहीं हूँ। मामा सूर्यमित्रकी यह बात सुन अग्निभूतिने उसकी प्रशंसा की और कहा, कि आप हमारे पिता ही हो। आपने जो, किया सो सब हित और पथ्य ही है, आपने हमारा जन्म सफल कर दिया और ज्ञानदानसे आजीविकाका उपाय भी कर दिया। विद्या और धर्मके दानसे बड़ा दूसरा कोई दान नहीं है। ज्ञान और धर्मके अलावा कोई दूसरा दाता नहीं।

जो विद्या और धर्मके दाताका उपकार नहीं मानते, वे मूर्ख और कृतघ्न होते हैं। कल्याणके कारणभूत उपकारको न मानना कृतघ्नता और मूर्खता है। ऐसे जो कृतघ्नी मूर्ख होते हैं। उन पापियोंके पापसे उनकी पढ़ी हुई विद्या भी नष्ट हो जाती है और वे यहाँ तो महामूर्ख होते ही हैं, किन्तु परलोकमें भी दुर्गतिके पात्र होते हैं।

अग्निभूतिने तो इसप्रकार अपने मामाका बड़ा भारी उपकार मानकर स्तुति की, किन्तु वायुभूतिने दुर्गति करनेवाली मामाकी निंदा करते हुए कहा, कि तू हमारा कैसा मामा है? तू तो महान् निर्दय नीच और चाण्डालके समान है। जो तूने हमसे भिक्षा माँगकर भोजन कराया। यहाँ आचार्य कहते हैं, कि ये दोनों सहोदर हैं, परन्तु दोनोंमें कितना अंतर है? इस बातसे मालूम होता है, कि कर्मोंकी गति विचित्र है। इसके बाद वे दोनों अपने नगरमें जाकर राजाके पास गये, राजाको आशीर्वाद दे तथा अपनी बुद्धिसे राजाको शास्त्र कौशल्यका परिचय दिया। राजाने भी सन्मानपूर्वक उनको उनका पुराना पद दे दिया और वे संपत्तिशाली होकर सुखपूर्वक रहने लगे।

दोनों भानजोंके जानेके पश्चात् एक दिन राजगृह नगरका राजा सुबल बहुमूल्य रत्नोंकी अंगूठी पहने हुए था। जब स्नानके पहले तैल मर्दन करानेको तैयार हुआ तो रत्नोंकी आभा खराब न हो जावे, इसलिए अंगूठी निकालकर विद्वान सूर्यमित्र पुरोहितको सौंप दी। पुरोहितने उसे अपनी अंगुलीमें पहन ली और घर चला गया, घर जाकर उसने संध्या-तर्पणादि ब्राह्मणकर्म कर जब राजाके दरबारमें जानेकी तैयारी की, तो उसे हाथकी अंगुलीमें अंगूठी नहीं दीखी। तब वह बहुत उदास हो गया। उसने परमबोध नामक विद्वान ज्योतिषी निमित्तज्ञानीको स्वयं बुलाकर पूछा, कि मेरे हाथसे जो सुवर्ण रत्नमयी अंगूठी गिर गई है,

राजा स्नान करने
जाते समय अपनी
रत्नमयी अंगूठी
पुरोहित सूर्यमित्रको
संभालने देते हुए ।

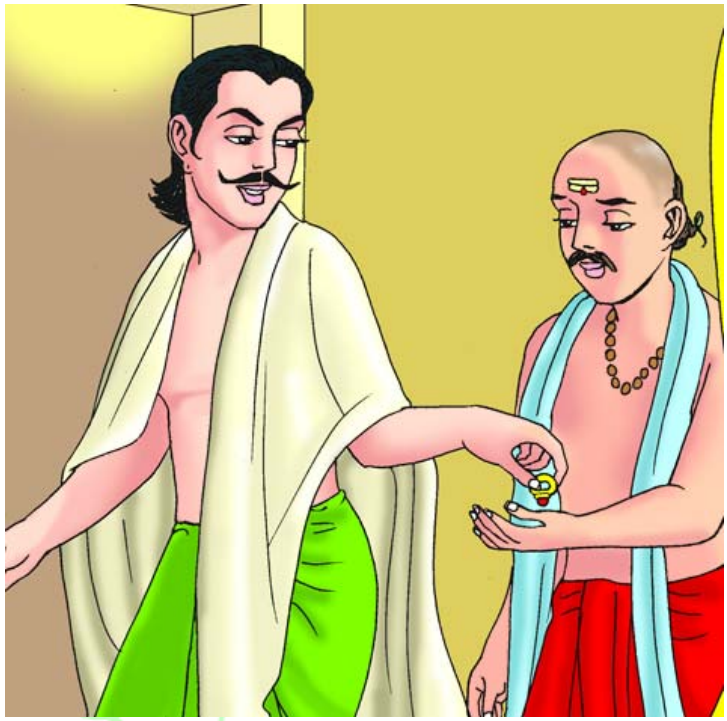

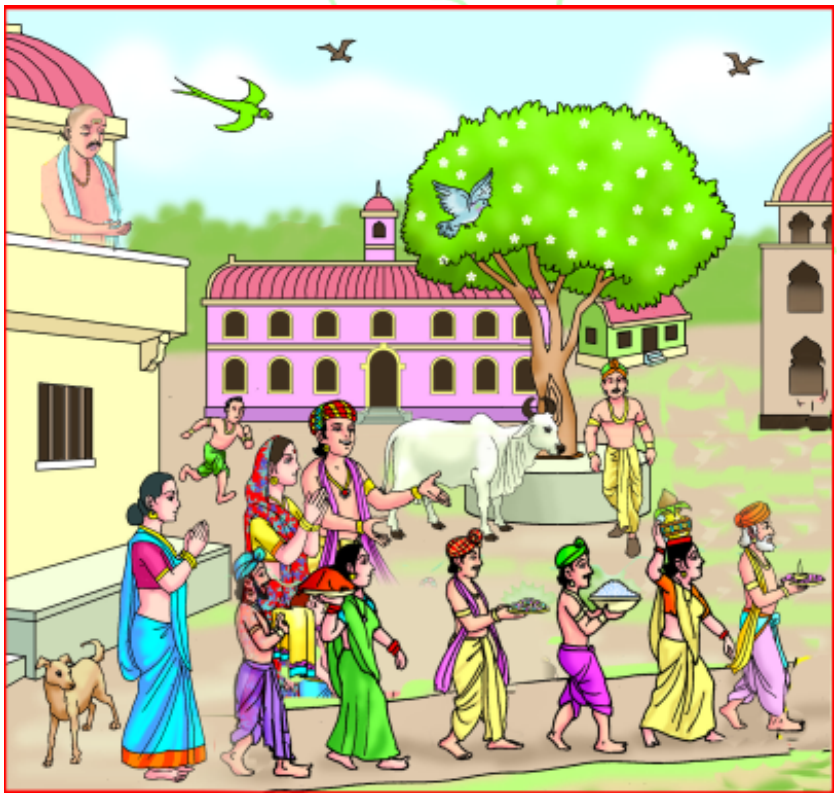

वनकी ओर
जाते
लोगोंको
देखता अंगूठी
गुमनेसे
चिंतातुर
पुरोहित
सूर्यमित्र

वह मिलेगी या नहीं? उस निमित्तज्ञानीने उत्तर दिया, कि मिल जायगी, परन्तु उसकी चिंता ऐसे ही न गई, उसे तो राजाको अंगूठी वापस देनी थी।

वह चिंतासे व्याकुल हो अपने महलके ऊपर चला गया। उसने नगरके बाहर उपवनमें जाते हुए बड़े संघ सहित, भव्य जीवोंको संबोधनेवाले, तीनलोकके देवोंसे पूजित चरणवाले, मतिश्रुत–अवधिज्ञानके धारी, जगतके हितकरनेवाले, जगतसे वंदित, जगतसे स्तुत्य सुधर्म नामक आचार्यको देखा। उसने उन आचार्यको देखकर विचार किया, कि ये ज्ञानवान् साधु हैं, वे मेरी अंगूठीकी बातको अवश्य ही जानते होंगे। इसलिए एकांतमें उन्हें पूछना

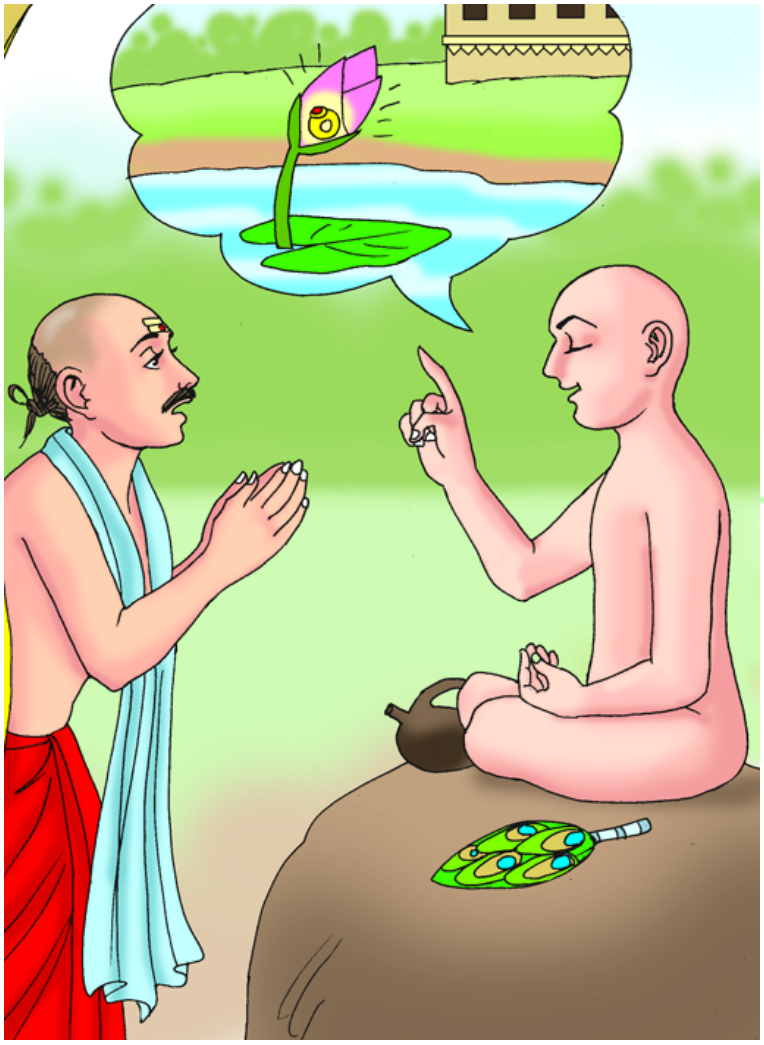

सुधर्म आचार्यसे सूर्यमित्र पुरोहित अंगूठी हेतु पूछता है, जिसे आचार्यदेव 'उसके महलके पीछेके तालाबमें कमलकी कलीमें बताते हुए

चाहिए। काललब्धिसे वह सूर्यास्तके कुछ समय पहिले, अंगूठीके विषयमें पता लगानेके लिए आचार्य–संघ निकट आया। ज्ञान ऋद्धि आदि गुणोंके सागर अपने शरीरमें भी निस्पृह, मोक्ष सिद्धिमें इच्छावाले योगीको देख लज्जा और अभिमानसे प्रश्न करनेमें असमर्थ होता हुआ भी, अपने कार्यकी सिद्धिके लिए उनके आसपास चक्कर काटने लगा। अवधिज्ञानके योगसे परोपकारी सुधर्माचार्यने उसे निकटभव्य जान कहा, कि–हे सूर्यमित्र! राजाकी अंगूठीको अपनी अंगुलीसे गिराकर चिंतित हो? क्या तू यहाँ मेरे पास अपनी चिंता मिटाने आया है? सूर्यमित्र पुरोहितने अपनी मानसिक चिंता और संपूर्ण बात जानकर परम आश्चर्यान्वित हो, योगिराजसे कहा, कि 'हाँ'। सूर्यमित्रने मुनिराजको नमस्कार कर पूछा, कि स्वामिन्! जहाँ अंगूठी गिरी है, वहाँका पता बतलाइये। तीन ज्ञानरूपी नेत्रवाले योगिराजने उत्तर दिया, विद्वन्! तुम्हारे महलके पीछेवाले उद्यानवाले तालाबमें जब तुम सूर्यको अर्घ दे रहे थे; तब तुम्हारे हाथकी अंगुलीसे अंगूठी निकलकर सरोवरवाले कमलकी कलीमें गिर गई और अभी तक वहीं मौजूद है। तुम उसके लिए चिंता छोड़ दो और मेरे वचनोंमें विश्वास करो।

पुरोहितने यह सुन वहाँ जाकर उसे देखा तो उसे वह ऐसी ही मिली और राजाको सौंपकर हृदयमें भारी आश्चर्य किया और विचारा, कि ये समस्त ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ, सारे विश्वको प्रत्यक्ष जाननेवाले अनुपम ज्ञानी हैं। इसलिए इन योगिराजकी आराधना कर, सब इष्ट प्राप्त करना चाहिए। जिससे मेरी सत्पुरुष विद्वानोंमें बड़ी आराधना होगी, मान्यता होगी, खूब ऐश्वर्य बढ़ेगा और उत्तम पद मिलेगा। इस प्रकार धनादिके लोभसे गुरुके निकट वह विद्या सीखने गया और उन योगीको नमस्कार कर हाथ जोड़कर प्रार्थना की, कि भगवन्! मुझ पर दया करके समस्त पदार्थोंको प्रत्यक्ष दिखलानेवाली यह दुर्लभ विद्या मुझे भी देनेकी कृपा कीजिए। यह सुन ज्ञानी मुनिराजने कहा, कि यह उत्कृष्ट विद्या निर्ग्रंथ नग्न दिगम्बर ज्ञानीके बिना किसीको प्राप्त नहीं होती। इसलिए यदि तुमको यह विद्या प्राप्त करनी हो तो मेरे समान तुम भी सम्यक्रत्नत्रयरूप अन्तरंग आत्मशुद्धिमय निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनिधर्म अंगीकार करो।

वह सूर्यमित्र ब्राह्मण विद्यालाभके लिए मुनीश्वरके पास जाकर नमस्कार कर बोला, कि भगवन्! मैं स्वार्थसिद्धिके लिए यह निर्ग्रन्थ दिगम्बर भेष धारण करना स्वीकार करता हूँ। सूर्यमित्रका होनहार भविष्य जाननेवाले मुनिराजने भी तीनलोकमें कल्याण करनेवाली, जगत्में वंदनीय जैनदीक्षा उस ब्राह्मणको दी। सूर्यमित्रने मुनिको नमस्कार कर प्रार्थना की, कि भगवन्! वह विद्या अब मुझे दया करके दे दीजिए। तब मुनिराजने कहा, कि केवल नग्न होनेसे थोड़े ही विद्या सिद्ध हो जाती है ? तब ब्राह्मणने भारी उद्यमसे बुद्धि लगाकर

गुरुसे चारों अनुयोगोंका पढ़ना प्रारम्भ किया। पुण्य-पाप व धर्मका फल प्रकट करनेके लिए सिद्धांत और धर्मके कारण प्रथमानुयोग आदि चारों अनुयोग उसने पढ़े। उनमें उस सूर्यमित्रने (अ) लोक-अलोक विभाग, उसका संस्थान, सात नरकोंका दुःख, स्वर्गादिके सुख, संसार–स्थितिका दीपक दर्शानेवाले करणानुयोगको, (ब) मुनिराजों और गृहस्थोंके आचरण, महाव्रतों अणुव्रतों, शीलव्रतों इनके फलादिको बतलानेवाले चरणानुयोगको और (क) छह द्रव्य, सात तत्त्व, पंच मिथ्यात्व, सत्यासत्यमतोंकी परीक्षा, प्रमाण, नय आदि बतलानेवाला द्रव्यानुयोग आदिको गुरुके मुखसे पढ़ा। द्रव्यानुयोग शास्त्रोंके पढ़ने व समझनेसे वह सूर्यमित्र ब्राह्मण विद्वान सम्यग्दृष्टि हो गया। अब उसे हेयोपादेयका ज्ञान हो गया। मैंने कुमार्गगामियों द्वारा कहे हुए असत्य, अशुभ कुतत्त्वोंको पढ़नेमें वृथा ही इतना समय लगा दिया, जिसका मुझे खेद है। आज इस जैनदीक्षासे मैं कृतकृत्य होकर मोक्षके मार्गका पथिक बन गया और पापोंसे दूर हटकर पवित्र होता हुआ तीन जगतमें पूज्य हो रहा हूँ।

इस भांति सूर्यमित्र पुरोहित विद्वान् हस्तरेखाकी तरह संपूर्ण हेयोपादेयके ज्ञान व वैराग्य सह मुनियोग्य सहज आचरणरूप वीतरागी मोक्ष पथिककी उग्र दशावंत बना। तब भगवंत सुधर्माचार्य, मुनिराज सूर्यमित्रको आचार्यपदवी देकर, स्वयं जिनकल्पी एकलविहारी मुनि भगवंत बन, निज कल्याण हेतु उत्कृष्ट वीतराग रत्नत्रयमय क्षपकश्रेणीरूप अन्तरंग प्रचंड उज्ज्वलता प्राप्त करते हुए मोक्षको प्राप्त हुए।

अब सूर्यमित्र आचार्यने भव्यजीवोंके कल्याणके लिए धर्मोपदेश देते हुए अनेक स्थानोंमें विहार करते-करते कौशांबी नगरीमें आहारके लिए प्रवेश किया। इनके गृहस्थावस्थाके भानजे तथा शिष्य अग्निभूतिने उनको पडगाहा और नवधा भक्तिपूर्वक दाताके सात गुणोंसे युक्त होकर विधिपूर्वक महामुनि श्री सूर्यमित्र आचार्यको आहार दिया। जब वीतरागी महामुनि श्री सूर्यमित्र आचार्य आहार ग्रहण करके जाने लगे, तब अग्निभूति ब्राह्मणने कहा, कि भगवान्! वायुभूति मेरा छोटाभाई क्रोध, मायाचार आदि अनाचार करता हुआ धन पैदा करता है और आपकी निंदा भी करता है सो आप उसको समझाईये, क्योंकि तीन जगत्के जीवोंको समझाकर मार्गमें लगानेके लिए आप ही समर्थ हैं। आचार्य महाराजने कहा, इस समय उसके पास जाना ठीक नहीं है। फिर अग्निभूतिने कहा, कि स्वामिन्! मेरे अनुरोधसे ही आपको उसके पास चलना और समझाना चाहिए फिर जैसा होनहार होगा वैसा होगा।

सबके साथ समान भाव रखनेवाले आचार्य महाराज अग्निभूतिके आग्रहसे उसके साथ वायुभूतिके पास चले गये। वायुभूति पापीने उन्हें देखकर, मुनि जानकर कटुक और खोटे

अपने पतिको वापस लाने हेतु समझाती भाभी सोमदत्ताको गुस्सेसे लात मारता वायुभूति

वचनोंसे क्रोधित हो पापके उदयसे उनकी भारी निंदा की। उसने महामुनिकी कटु वाक्योंसे (तीव्र अशुभरूपभावसे) निंदा करनेसे अल्पायुमय अशुभ तिर्यंचगतिका बंध बाँध लिया। ठीक ही है, कि जैसा जिसका होनहार होता है, वैसी ही उसको सारी सामग्री मिल जाती है।

क्षमादि गुणोंके धारक आचार्य सूर्यमित्र महाराज समताभावकी अधिक वृद्धिके लिए वनमें चले गये। अग्निभूतिने मनमें विचारा, कि इसका दोषी मैं ही हूँ, जो मैं इनको जबरदस्ती वायुभूतिके पास ले गया। मुनिनिंदासे जो पाप लगा है, उसका मैं भी भागी हूँ, क्योंकि कृत-कारित और अनुमोदना इन तीनोंसे बराबर ही पाप अथवा पुण्य होता है। अब मुझे उसका प्रायश्चित्त करना चाहिए, इस पापकी विशुद्धिके लिए घरको जेलके समान और बंधुजनोंको शत्रुओंके समान जान उनको छोड़कर संयम धारण करना चाहिए।

अग्निभूति महाव्रतोंके धारणार्थ जब वनको चला गया, तो उसकी भार्या सोमदत्ताको बड़ा भारी दुःख हुआ। वह उदास होकर वायुभूतिके पास गई और शोक और शांतिके लिए उसे कहा, कि तुमने दुष्टतासे महामुनिकी जो निंदा की उससे मेरा पति हृदयमें वैरागी हो दीक्षित हो गया। जब तक किसीको यह बात मालूम न पड़े, तब तक अपना कर्तव्य है, कि हम चलकर उनको समझाकर ले आवें। यदि हमने देर की, तो फिर लाना असंभव हो जायेगा। सोमदत्ताकी बात सुनकर वायुभूतिको बड़ा भारी क्रोध आया और उसने क्रोधमें अंधे हो, अपनी भोजाईके मुँह पर लात मारी। इस तरहकी मार फटकारसे सोमदत्ताको भी अपना और दूसरेका नाश करनेवाला क्रोध आया और उसने निंदनीय कर्म करनेवाला जगत्में निंद्य निदान बंध किया और कहा, कि मैं असमर्थ अबला हूँ। इस समय तो इस अपराधके फल स्वरूप तेरा कुछ बिगाड़ नहीं कर सकती, किन्तु अगले जन्ममें, मैं ऐसी बनूँगी जो तेरे पाँवको खाऊँगी, यह निश्चय समझना।

तत्पश्चात् वह वायुभूति वीतरागी देव-गुरु-धर्मके प्रति अनादर, तिरस्कार आदिके अत्यंत मिथ्यात्व व अनीति, अन्यायके फल स्वरूप सुकुमालके छठवें पूर्वभव गधीके भवमें उत्पन्न हुआ। वहाँसे वह आर्त्तरौद्र ध्यानपूर्वक मरकर, उसी नगरमें (सुकुमालका पूर्व भव नं. ५) सूकरी (सूअरीकी बच्ची) हुआ। वहाँ ताड़न, मारन, भूख, प्यास आदिके दुःख —कि जो वीतरागी देव-गुरु-शास्त्रके प्रति अत्यंत घृणा-तिरस्कार, अपमानके फलमें मिले थे—उसे भोगता हुआ वह उसी नगरमें अल्प आयुष्यमें ही मरकर चण्डालके घरमें भयंकर मुँहवाली (सुकुमालका पूर्वभव नं. ४) कुत्ती हुआ। वहाँ भी दुःख भोगता हुआ अन्ततः मरकर कौशांम्बी नामक नगरमें (सुकुमालका पूर्वभव नं. ३) चण्ड़ालिनी हुआ। ये सब उक्त भव कम आयुष्यवाले हुए।

एक दिन धर्मपरायण सूर्यमित्र और अग्निभूति मुनिराज भूमंडलमें विहार करते-करते, वहाँ आ गये। सूर्यमित्र मुनिराजका तो उपवास था। वे तो वनमें ही ठहर गये, किन्तु अग्निभूति मुनिराज शरीरकी स्थितिके अर्थ आहारके लिए वनसे चंपानगरीमें आये। मार्गमें जाते हुए बहुत फलोंसे सने हुए जामुनके वृक्षके नीचे खड़ी हुई, दुःखसे पीड़ित चण्ड़ालिनीको देखा। उस चण्ड़ालिनीको देखते ही वे अग्निभूति महामुनिराज भी स्नेहसे कुछ दुःखी हो गये। श्री अग्निभूति महाराज उस चण्ड़ालिनीके देखनेसे अपनी ऐसी अवस्था देख, वनको वापस लौटे। श्री अग्निभूतिने अपने गुरु महाराजको नमस्कार कर पूछा, प्रभो! चण्ड़ालिनीको देखनेसे मुझे शोक क्यों हुआ? इस शोक आदि होनेका कारण क्या है? कृपा करके मुझको बतलाईये। सूर्यमित्र मुनिराज बोले, कि धीमन्! यह चण्ड़ालिनी तुम्हारे भाई वायुभूतिका ही जीव है। इसने मेरी निंदा की थी; उसी निंदा जनित पापसे उस वायुभूति पर्यायमें भी महान् कुष्ट (कोढ) व्याधिके दुःख भोगे और थोडे ही समयमें मरकर अनेक तिर्यंच गतिमें रुलकर जगत्में निंदनीय नेत्रहीना कुरुप चण्ड़ालिनी हुआ है। पूर्व जन्मके स्नेह सम्बन्धसे तुम्हें यह शोक और दुःख हुआ है।

अग्निभूते! तुम एक बात और भी सुनो और वह यह है, कि तुम्हारे भाई वायुभूतिका मरण आज ही होनेवाला है। उसे संबोधकर युक्तिपूर्ण वाक्योंसे उसके कल्याणके लिए उसे व्रतपूर्वक संन्यास तुम ही करा सकते हो। श्रीगुरु महाराजके ये वाक्य सुनकर परोपकारी अग्निभूति महामुनिने उत्तम वाणी द्वारा चण्ड़ालिनीको पूर्वभवोंका स्मरण कराते हुए आत्मा व उसको प्राप्त करनेकी विधि कहा, कि बेटी! तू देव-गुरु-शास्त्रकी निंदाके पापसे तिर्यंच गतिके दुःख भोगकर अब इस नीचकुलमें पैदा होकर महान दुःख भोग रही है। इसलिए तू पापको नष्ट करनेवाले धर्मको ग्रहण कर। उस धर्मकी सिद्धिके लिए सच्चे देव-शास्त्र-गुरुके प्रति विनय भक्तियुक्त होकर मद्य, मांस, मधु और पांच उदम्बर फलोंका त्याग कर व चारों प्रकारके आहारका त्याग कर। पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत ग्रहण कर और तू मेरा कहना मानकर संन्यास ले ले क्योंकि तेरा आज ही मरण होनेवाला है। इसलिए अब तू अपने कल्याणके लिए मैंने जो कहा है, सो शीघ्र कर। उस चण्ड़ालिनीने भी अग्निभूति मुनिराजके वचनसे वैसा ही करके व्रत ग्रहण किये और भोजनादिका त्याग कर संन्यास धारण कर लिया।

उसी समय उस नागशर्मा ब्राह्मणकी स्त्री त्रिदेवी, पुत्रीकी प्राप्तिकी इच्छासे उत्सव सहित इन नागोंको पूजनेके लिए आ रही थी। उसी मार्गमें खड़ी चण्ड़ालिनीने—कि जो वायुभूतिका ही जीव था और जो अग्निभूति मुनिराजके उपदेशसे समाधिमरण कर रही थी।

उसने—गाजे बाजे आडंबरकी आवाज सुन यह निदान किया, कि मैंने जो व्रतपूर्वक संन्यास लिया है उसके फलसे इस (नागशर्माकी स्त्री त्रिदेवी)की कन्या होऊँ और दूसरी गति नहीं पाऊँ। इस प्रकार निदान किया सो यह सब कुबुद्धिका ही फल है।

यह सारा वृत्तांत श्री सूर्यमित्र मुनिराजसे राजा चन्द्रवाहन, नागशर्मा पुरोहित, वहाँ उपस्थित सुबल राजा, व उनका भतिजा अतिबल आदि तथा नागश्री (सुकुमाल पूर्वभव-२) व कई रानियाँ जो-जो वहाँ आये थे उन सबने सुना। उन सबने वैराग्ययुक्त होकर महाव्रत, अर्जिका, क्षुल्लिका आदि अपनी शक्ति अनुसार विविध रत्न ग्रहण किये और धर्ममें उद्यमवंत बने। इस भांति भगवान सूर्यमित्र मुनिराजका संघ बहुत बड़ा हो गया। वे संघ सहित विविध तप करते विहार कर रहे थे और सभी अपने-अपने भावोंकी विशुद्धतासे आयुष्य पूर्ण कर विविध भांतिके देव हुए। नागश्री आदिने स्त्रीलिंगको छेदकर महर्द्धिक देव(सुकुमाल-पूर्वभव नं.-१) आदि हुए। वहाँ वे तीर्थंकरदेवोंके कल्याणको मनाने, देव-गुरु-शास्त्रकी पूजा आदि धर्मकार्योंमें लग गये।

भगवान सूर्यमित्र व अग्निभूति महामुनि भगवंतोंने विशेष रत्नत्रयकी शुद्धि प्राप्त कर, विशेष शुक्लध्यान आदि द्वारा घातिकर्मोंका नाश कर केवलज्ञान प्राप्त किया। देवोंने (गंधकूटीरूप)समवसरणकी रचना की व दिव्यध्वनि द्वारा उन्होंने मोक्षमार्गका प्रकाश करके कुछ ही समयमें सिद्धदशाकी प्राप्त की।

तदनन्तर जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें विनयवान् श्रेष्ठ धर्मात्माओंसे संयुक्त अवन्ति देश है। उसमें विभूतिवाली उज्जैनी नगरीमें धर्मिष्ठ वृषभांक नामक राजा था। इसी नगरीमें पुण्योदयसे समस्त लक्षणोंसे सुशोभित, धर्मकार्यमें अगुआ सुरेन्द्रदत्त नामका महान् धनी सेठ रहता था। इस सेठके प्रेमपात्र, मनोहर यशोभद्रा नामकी स्त्री थी। पुण्यके उदयसे इनके घरमें सुवर्ण, चांदी, परिवार कुटुम्ब आदि सभी प्रकारकी विभूतियाँ थीं, परन्तु केवल कुलदीपक कोई पुत्र नहीं था।

एक दिन मति, श्रुत, अवधिज्ञानके धारी श्रेष्ठमति वर्धमान नामक मुनिराज विहार करते-करते नगरीके उद्यानमें पधारे। राजा वृषभांकने सूचनाके लिए नगरमें डाँड़ी पिटवाई और हर्षपूर्वक नगरजनोंके साथ मुनि वंदनार्थ प्रस्थान किया। डाँडीकी अवाज सुन यशोभद्रा सेठानीने अपनी सखीसे पूछा, कि यह डाँड़ी क्यों पिटी है। सखीने उत्तर दिया नगरमें मुनिराज पधारे हैं। राजाने जनताके सूचनार्थ भेरी बजवाई है।

यशोभद्रा भी यह बात सुन, पूजाकी सामग्री लेकर अपने अभीष्टकी सिद्धिके लिए

मुनिराजके दर्शनार्थ गई। मुनिराजको बिराजे देख राजा आदि सभीने वंदना पूजा की और यशोभद्रा भी वंदना पूजा करके अपने योग्यस्थान पर बैठ गई। मुनिराजके मुखसे दयाप्रधान और जगत्का कल्याण करनेवाला व्याख्यान सुन यशोभद्रा सेठानीने मुनिराजसे प्रश्न किया, कि कृपया बतलाईये, कि मेरे पुत्र होगा या नहीं? यह सुन मुनिराज बोले—महान्, धीर, दिव्यरूपधारी, गुणोंके समुद्र, महान भाग्यशाली, जगत्में मान्य, संपूर्ण कार्योंके करनेमें समर्थ, ऐसा पुत्र तेरे पेटसे अवश्य जन्म लेगा, लेकिन तेरा पति पुत्रके अभाव तक ही घर रहेगा जब तक, कि वह पुत्रका मुख न देख लेगा। पुत्रका मुख देखते ही संपूर्ण लक्ष्मीको छोड़कर वह तपोवन जाकर संयम ग्रहण कर लेगा और तेरा वह भावी पुत्र भी इतना धर्मात्मा होगा, कि मुनिराजके केवल दर्शन तथा वचनके सुननेसे ही धीर वीर पुरुषोंके योग्य दुर्धर तपको अंगीकार कर लेगा।

इधर सेठानीको शुभ पुण्योदयसे गर्भ रह गया। घरके एक कोनेमें बैठी रहती और किसीको गर्भाधानकी बात तक मालूम न होने देती। उसने नौ महिने पूर्ण हो जाने पर अपने दिव्य भूमिगृह (जमीनका अंदरके गृह)में जाकर देदीप्यमान भाग्यशाली पुत्रको जन्म दिया। वह जीव पूर्व जन्ममें 'नागश्री' था। वहीं जीव देवगतिसे सेठानीके यहाँ पुत्र हुआ।

अपवित्रतासे भरे प्रसूतिवस्त्रोंको सेठानीकी नौकरानी घरके बाहर धोनेको ले गई और उन वस्त्रोंको धो रही थी। तब एक ब्राह्मणने देखकर हृदयमें विचार किया, कि सेठको आज पुत्र हुआ है। इसी कारण यह नौकरानी इन कपड़ोंको धोने लाई है। उस ब्राह्मणने सेठजीके पास जाकर कहा, कि आपके महान् पुण्यसे निश्चित पुत्र ही हुआ है। सेठने पुत्रके मुखका अवलोकन किया और ब्राह्मणको बधाईमें इनामके रूपमें बहुत ही संपदा दी और सारी लक्ष्मीको तृणके समान समझकर छोड़ता हुआ तपश्चरणके लिए वनमें जाकर, श्रीगुरुसे दीक्षा ग्रहण कर, मोक्ष देनेवाला तपश्चरण करना प्रारंभ किया।

यशोभद्राने पुत्रजन्मोत्सवकी खुशीमें जिनालयमें जिनेन्द्रदेवका महोत्सव ठाठबाटसे पूजा आदि कर, बंधुजनोंका सत्कार करते हुए आनन्दसह मनाया और अत्यंत कोमल अंग होनेसे पुत्रका नाम सुकुमार (सुकुमाल) रखा। नामकरण संस्कारविधिके बाद बालक सुकुमाल द्वितीयाके चन्द्रमाकी भाँति नेत्रोंको आनंद देनेवाला देदीप्यमान कांतिसमूहके साथ बढ़ने लगा। वह बालक सुकुमाल दिव्यलक्षणों और आभूषणादि तथा शरीरकी कांति तेज आदिसे कुमार अवस्थामें देवकुमारके समान शोभायमान था।

सुकुमालकी माताको सदैव चित्तमें इस बातकी चिंता रहती थी, कि कुमार कहीं मुनिदर्शन न कर ले क्योंकि उसे मुनिके इस वाक्यमें विश्वास था, कि मुनिदर्शन प्राप्त करते ही कुमार तप स्वीकार कर लेगा। इसलिए मुनिदर्शनसे बचनेके लिए माता यशोभद्राने नाना प्रकारके रत्नोंसे जड़ा एक स्वर्णमयी सर्वतोभद्र महल तैयार करवाया। उसके चारो तरफ बड़ी लागतसे चांदीके बत्तीस छोटे महल बनवाये। उस महलके चारों ओर द्वारपाल नियुक्त कर दिये ओर मोहनीयकर्मसे अंध हुई, यशोभद्राने उस महलके चारों तरफ मुनिराजको आनेकी मनाई (निषेध) करा दी।

वह सुकुमाल अपनी इच्छासे क्रीड़ा तथा आमोद-प्रमोद करता हुआ, दिन-रातका भेद नहीं जानता था, जात-भात आदिके भेदोंको नहीं जानता था, न उसे सर्दी-गर्मी आदिकी बाधा भी मालूम होती थी। वह संपूर्ण दुःखोंसे रहित और सुखमें मग्न स्वर्गके इन्द्रकी भांति रहने लगा। यशोभद्राने सुकुमालको विवाह योग्य जानकर चतुरिका, चित्रा, रेवती, पद्मिनी, मणिमाला, सुशीला, रोहिणी, सुलोचना, सुदामा आदि ३२ सेठ कन्याओंसे बड़े भारी ठाठ-बाटके साथ उस सर्वतोभद्र महलमें विधि अनुसार विवाह किया। सुकुमालकी माता यशोभद्राने सुकुमालके विवाहके बाद बत्तीसों पुत्रवधुओंको एक एक महल सुखपूर्वक रहनेको दे दिये। वह सुकुमाल पुण्यवान् स्त्रियोंके साथ निरंतर विषयभोग भोगता हुआ, सर्वथा चिंतारहित हो, इन्द्रके समान सुखके समुद्रमें मग्न होकर बीते हुए कालको भी न जानता था।

एक दिन एक परदेशी व्यापारी रत्नोंसे जड़ा हुआ एक शाल (रत्नकंबल) बेचनेके लिए आया और उसे नगरीके राजा वृषभांकको दिखलाया। यह शाल बहुमूल्य था। व्यापारीने जो उसका मूल्य माँगा उसे देनेमें राजा असमर्थ था। इसलिए वापस ही दे दीया। तब व्यापारी सेठने रत्नकंबल धनाढ्य सेठानी यशोभद्राको खरीदनेके लिए दिखलाया। यशोभद्रा सेठानीको वह रत्नकंबल पसंद आ गया ओर खरीद लिया। यशोभद्राने वह अपने पुत्र सुकुमालके योग्य जानकर उसे दे दिया।

श्री सुकुमालने उसे देखकर तथा हाथ लगाकर जब यह जाना, कि यह तो महान् कठिन (कड़ा) होनेसे मेरे उपयोगके लायक नहीं है, छोड़ दिया। तब यशोभद्रा सेठानीने उसके टुकड़े-टुकड़े कराकर अपनी बत्तीस पुत्रवधुओंके पाँवोंमें जो जूतियाँ थी, उनमें उन रत्नोंको जड़वा दिया अर्थात् रत्नकंबलकी जूतियाँ बनवा दीं। इन बत्तीस स्त्रियोंमें जो सुदामा नामक स्त्री थी। वह रत्नजड़ित जूतियोंको पहनकर अपने महलके ऊपर चली गई—वहाँ थोड़ी देर तक बैठी रही और जब वापस आने लगी तो पश्चिमद्वार मंडपमें उन खुली हुई

जूतियोंको भूल आई और अपने महलमें आ गई। महलकी छत पर पड़ी हुई जूतियोंको मांस समझकर एक गीध उठा ले गया और राजा वृषभांकके बहुत ऊँचे महल पर ले जाकर उसने खानेके लिए चौंच मारी। वह कठोर रत्न था। कैसे खाया जाता? गीधने खानेका बड़ा भारी यत्न किया, परन्तु जब वह न खा सका तो उसे क्रोध आया ओर वहीं उसे डाल दिया और उड़ गया।

समय पाकर राजाने उस रत्नकंबलसे अंकित जूतीको जब वहाँ पड़े हुए देखा तो आश्चर्यमें मग्न होकर पूछा, कि यह सुन्दर जूती किसकी है? इस प्रकार पूछने पर राजाको उत्तर मिला, महान लक्ष्मी ओर सौख्यके धारक सुकुमालके स्त्रीकी यह जूती है। राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्हें सुकुमालको देखनेकी इच्छा हुई और उसे मिलनेके लिए उसी समय चल पड़ा। जब यशोभद्राको विदित हुआ, कि राजा वृषभांक आ रहा है, तब उसने बड़े ठाठ-बाटसे राजाको स्वागतके साथ अपने घरमें प्रवेश कराया। स्वर्णमयी सिंहासन लगाकर उस पर बिठाया। राजाको नजराना भेंट कर पूछा, कि आपके यहाँ पधारनेका कारण क्या है? तब राजा वृषभांकने कहा, मैं तुम्हारे पुत्रको मिलनेके लिए यहाँ आया हूँ और कोई कारण नहीं है। यशोभद्राने मान-सन्मानकी व्यवस्था करके अपने पुत्र सुकुमालको बुलाया और राजासे मुलाकात कराई। राजाने सुकुमालके अतिशय रूपसे प्रभावित हो अपने आसनके आधे भाग पर उसे बिठाया और बड़ा प्रसन्न हुआ।

यशोभद्राने इसके बाद राजासे प्रार्थना की, कि महाराज! आपको आज मेरे घर पर ही भोजन ग्रहण करना पड़ेगा। राजाने उसकी प्रार्थनाको स्वीकार कर लिया। राजाने श्रेष्ठिपुत्र सुकुमालके साथ सुवर्णपात्रमें भोजन किया। भोजनके बाद राजाने सेठानी यशोभद्रासे कहा, कि तुम्हारे पुत्र सुकुमालको तीन रोग हैं, जिनका तुमको इलाज कराना चाहिए। राजाकी बात सुनकर यशोभद्राने कहा, कि महाराज! वे तीन व्याधियाँ कौनसी हैं? बतलानेकी कृपा करें। तब राजाने कहा कि–एक तो इसका आसन स्थिर नहीं, किन्तु चलायमान रहता है, दूसरा इसकी आँखोंमेंसे पानी आता है, तीसरा यह एक-एक चाँवल उठाकर खाता है। राजाके द्वारा बतलाई हुई इन तीन व्याधियोंकी बात सुनकर यशोभद्राने कहा, कि महाराज! ये तीनों ही जो आप व्याधि बतलाते हैं, व्याधियाँ नहीं हैं।

यशोभद्राने राजाको बतलाया, कि 'महाराज! यह मेरा पुत्र सदैव अत्यन्त कोमल दिव्य शय्या पर ही सोता है और वैसी ही गद्दी पर बैठता है। आज जो यह आपके

साथ इस सिंहासन पर बैठा है और आपके पधारनेसे हमने मंगलस्वरूप आप पर सरसों डाली हैं, उन सरसोंमेंसे कुछ इस आसन पर भी गिर गई हैं जो इस मेरे अतिकोमलांग पुत्र सुकुमालको चुभ रही थी। उस कठोरतासे इसका आसन चलायमान हो रहा था। अतः यह रोग नहीं है।

आँखोंमें पानी आनेका कारण यह है, कि यह सुकुमाल सदैव रत्नोंके दीपकके प्रकाशमें ही रहता है। इसने रत्नोंकी प्रभाके अतिरिक्त दूसरी कोई प्रभा देखी ही नहीं। आप जो पधारे सो आपकी मंगलस्वरूप आरती उतारी गई है, जिसमें घृत जलाया गया। इस प्रभाके कारण इसके नेत्रोंमें पानी आ गया है, क्योंकि इसके नेत्र ऐसी तेज प्रभा सहन नहीं कर सकते।

चाँवल एक एक खानेका कारण यह है, कि जो यह चाँवल खाया करता है, उनको सूर्यास्तके समय सरोवरमें गीली कमलकी कलीमें रख दिये जाते हैं। जब चाँवल अत्यन्त सुगंधित और कोमल हो जाते हैं, तब प्रातःकाल उनको धोकर बनाये जाते हैं, परन्तु आज आपके पधारनेसे कुछ अधिक चाँवलोंकी आवश्यकता थी। इसलिए उन चावलोंमें कुछ साधारण चाँवल भी मिला दिये थे। इन सबको खानेमें इसकी अरुचि थी। इसलिए अरुचिपूर्वक एक-एक चावल उठा कर खाता था। अतः जिनको राजन्! आपने बिमारी समझा है; वह बिमारी नहीं है।

राजाको यशोभद्राकी बात सुनकर बड़ा भारी आश्चर्य हुआ, राजाको सेठानीने रत्नाभूषण वस्त्रादि अनेक भेंट देकर विदा करते हुए स्तुति की। राजाने भी उस सुकुमारका नाम अवन्ति सुकुमार (सारी पृथ्वी पर कोमल–नाजुक) रख दिया। इस प्रकार अवंतिसुकुमारकी तीनलोकमें कीर्ति फैल गई और वह अपने पुण्योदयसे नानाप्रकारके सुख भोगता रहा।

एक दिन सुकुमालका मामा, धर्मबुद्धि, जगत्हितैषी महामुनि यशोभद्रने अवधिज्ञानसे यह जान लिया, कि सुकुमालकी आयु बहुत थोड़ी रह गई है। पूर्वजन्मसे चले आये सम्बन्धसे महा मुनिराजने सुकुमालके हितके लिए विचार, किया। अहो! साधनाके लिए इतनी दुर्लभ आयु यों ही चली गई, अब उसे संयम ग्रहण करना चाहिए। यह विचार श्री यशोभद्र महाराजने उसे संबोधनेके लिए चातुर्मास योग ग्रहण करके सुकुमालके महलके निकट उद्यानमें देदीप्यमान ऊँचे जिनमंदिरमें पदार्पण किया। उस वनपालकने माता यशोभद्रासे जाकर निवेदन किया, कि जिनालयमें महामुनि पधारे हैं।

यशोभद्र मुनिराजको मंदिर व नगरसे चले जानेकी विनती करती यशोभद्रा शेठानी

यशोभद्रा जिनालय पहुँची और अपने भ्राता यशोभद्र मुनिराजको नमस्कार कर बोली, कि स्वामिन्! मेरे प्राणोंसे प्यारा एक ही पुत्र है। यदि आपके शब्द सुन लेगा तो वह जिनदीक्षा लेकर तपस्वी बन जायेगा। जिससे मेरा भारी आर्त्तध्यानका कारण होकर मेरी मृत्यु हो सकती है। इसलिए आप दया करके किसी और जगह पधार जाईए। यहाँ न ठहरीये। मुनिराजने उत्तर दिया, कि आज हमारा चातुर्मासयोगका यह दिन है। जीवदयापालन करनेवालेके लिये कहीं भी जाना उचित नहीं। अथनन्तर सुकुमालने उन मुनिराजको दूरसे अपने मकानके गोखमेंसे देखा, जिससे उसे मुनिराजका जीवन पसन्द आया।

श्री यशोभद्र महाराजने जब ज्ञाननेत्रसे यह जान लिया, कि सुकुमालकी आँख खुल गई हैं। तब उसे बुलवानेके लिए प्रज्ञप्तिवाणीसे संपूर्ण तीनलोकका वर्णन करना प्रारंभ किया, पहले तो वैराग्यभावोंको उपजानेके लिए अधोलोकके दुःखोंका वर्णन किया और पीछे मध्यलोकका वर्णन करके अच्युत स्वर्गके पद्मगुल्म विमानमें पद्मनाभ देवकी बड़ी भारी विभूति और सम्पदाको अपनी वाणीसे वर्णन किया।

जिसके सुननेमात्रसे सुकुमालको जातिस्मरण हो गया। सुकुमारको अपने सारे पुराने भवोंकी घटनाओंका ज्ञान हो गया और उसने इन्द्रिय सुखों और संसारसे वैराग्यभाव धारण कर विरक्तचित्त हो विचार किया, कि—अहो! विषयोंकी पीड़ाकी शांतिके लिए जिस शरीरके द्वारा ये भोग भोगे जाते हैं। वह शरीर तो अत्यन्त निःसार, चलायमान और मलमूत्र विष्टा आदिसे भरा हुआ है। मैंने इतने समय तक इस शरीरको वृथा ही पाला पोसा, वास्तवमें मैं महान् मूर्ख हूँ। जो नर भव पाकर भी अपना यह महाकार्य सिद्ध नहीं करते; उनका यमरूपी शत्रुने गला पकड़ रक्खा है और वे दुर्भाग्यसे क्षणमात्रमें दुर्गतिरूपी समुद्रमें गिर जाते हैं।

सुकुमालने विचार किया, कि इस महलसे निकलनेका मुझे इस समय कोई उपाय नहीं दिख रहा है क्योंकि महल पर्याप्त ऊँचा है इसके द्वारके बड़े मजबूत बंद किवाड़ हैं, अतः कैसे निकला जाय! परन्तु वह वैराग्यमें जानेके लिए तत्पर, तपश्चरण करने तैयार था। उसने वहाँसे उतरनेके उपायकी खोजमें लगकर एक कपड़ेकी गाँठ देखी। सुकुमालने उस कपड़ेकी गाँठमेंसे कपड़े निकाल कर, उनको आपसमें गाँठे देकर लंबा रस्सा बनाकर खँभेसे बांधकर लटका दिया और शुभभावोंके उदयसे उसे पकड़कर वह नीचे जमीन पर उतर कर, मुनिराज यशोभद्र महाराजके पास जा पहुँचा।

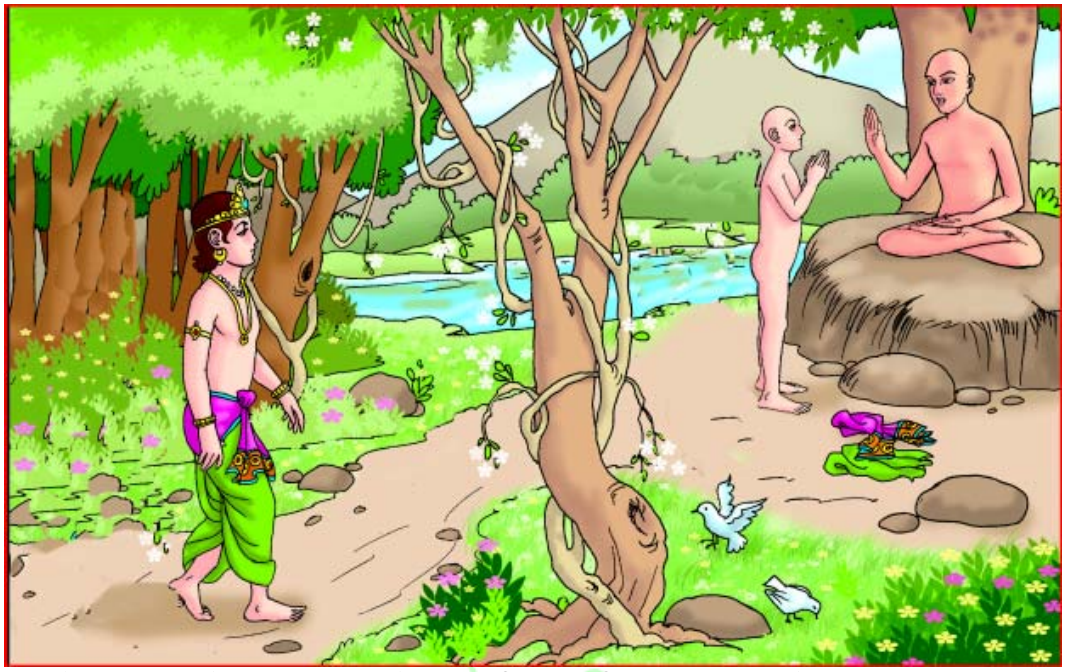

वनमें मुनिराजको ढूंढकर उनसे भगवती जिनदीक्षा ग्रहण करते मुनिराज सुकुमाल

उसने मुनिराजको तीन प्रदक्षिणा दे, मस्तकसे नमस्कार कर जोड़े हुए दोनों हाथ धर संयम प्रदान करनेकी प्रार्थना की और कहा, कि भगवन् विषयोंमें आसक्तिके कारण संयम और तपश्चरणके बिना मेरे इतने दिन वृथा ही चले गये, मेरा मोहरूपी विष उतर गया और मैं जाग गया हूँ। अब आप कृपा करके मुक्तिकी मातास्वरूप भगवती जिनदीक्षा मुझे देनेकी कृपा करें, क्योंकि इसीसे कल्याणका लाभ होगा और यही कल्याणकी खान भी है।

सुकुमालकी यह प्रार्थना सुन यशोभद्र महाराज बोले, कि भद्र! तुमने यह बहुत ही सुन्दर विचार किया है, क्योंकि अब तुमारी आयु केवल तीन दिनकी ही शेष रह गई है। श्री सुकुमालने मुनिराजके मुखसे यह बात सुन, उसी समय समस्त अंतरंग बहिरंग परिग्रहका त्याग कर जिनमुद्रा ग्रहण कर ली और खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, पेय इन प्रकार चारों प्रकारके आहारका भी त्याग कर संन्यास ग्रहण कर लिया। प्रातःकाल ही संन्यास धारण किये हुए श्रेष्ठ ध्यानकी आराधनाके लिए वे दूसरे वनमें चले गये। अत्यंत भयानक निर्जन प्रदेशमें देहसे सब प्रकारके ममत्व छोड़, अपने निश्चल शरीरको पृथ्वी पर खड़ा कर प्रायोपगमनरूप कठोर संन्यास धारण कर लिया। यशोभद्र मुनिराज भी चातुर्मास योग समाप्ति हो जाने पर संक्लेश निवारणार्थ जिनमंदिरसे वनमें चले गये।

इधर अल्प समयमें महलोंमें जब उनकी ३२ स्त्रियोंने अपने पति सुकुमालजीको नहीं देखा–इधर उधर खोज की। जब वे नहीं मिले। तब उन्होंने दुःखसे व्याकुलित होकर अपनी सास अर्थात् माता यशोभद्रासे कहा, कि—माताजी! आपका पुत्र व हमारे प्राणाधार दिखते नहीं, महलसे कहाँ चले गये सो मालूम नहीं होता। यशोभद्राने जब यह समाचार सुना तो मूर्छित हो गई। सारे स्वजन बंधुजन रोने लगे और वे ३२ स्त्रियाँ भी रोने पीटने लगी। जब उनका शीतोपचार किया तो उनको होश आया तो उसे खोजना प्रारंभ किया। यशोभद्राने इधर-उधर ढूँढती खंभोंसे लटकती हुई एक वस्त्रमाला देखी। उसने जान लिया मेरा पुत्र इसे पकड़कर नीचे उतरा है और निश्चय किया, की सुकुमाल उन मुनिके पास गया होगा सो चैत्यालयमें गई। जब चैत्यालयमें यशोभद्र मुनिराजको नहीं देखा तो बंधुजनोंके साथ शोकाकुलित हो समस्त स्थानों पर ढूँढना प्रारंभ किया।

इधर तो समस्त कुटुम्बीजन शोकसागरमें मग्न हो रहे थे। उधर सुकुमाल स्वामी निर्जन वन प्रदेशमें हलन चलन रहित ठूँठके समान खड़े हुए, विद्वान, निर्मल आशयवाले, अपने शरीरके वैयावृत्यमें भी निरपेक्ष, बारह भावनाओंके चिंतनमें लीन होकर ध्यान कर रहे थे।

उधर सुकुमालकी पूर्वभवकी भौजाई, अग्निभूति ब्राह्मणकी स्त्री सोमदत्ताके मुख पर पूर्वभवके वायुभूतिने (अभी सुकुमार हैं, उन सुकुमालजीके जीवने) लात मारी थी। संसारमें अनेक त्रस स्थावर योनियोंमें परिभ्रमण कर पापकर्मके उदयसे उसी वनमें जहाँ, कि सुकुमाल स्वामी ध्यान लगा रहे थे, स्यालनी हो गई थी। जब कोमल अंगके धारी महान् कोमलांग सुकुमालजी वनमें आये थे, उनके अत्यन्त कोमल पाँवोंमेंसे रुधिरकी धारा बह चली थी। कहाँ वह नाजुकपना, जो कि सरसोंके दाने भी चुभते थे और कहाँ यह संयम धारण! सो सुकुमाल स्वामीके पाँवोंसे निकली रुधिर धाराको उस पापिनी स्यालनीने चाटा। उसे रुधिरका स्वाद आ गया था। वह सुकुमाल स्वामीको निश्चल खड़ा देख पूर्वजन्मके क्रोध और निदानके दोषसे सुकुमालस्वामीके पाँवको क्रोधित हो खाने लगी। तत्पश्चात् उस स्यालनीके बच्चे थे। वे भी उसके बाँये पाँवको खाने लग गये। जब सुकुमालजीके पाँवोंको धीरे-धीरे नोच कर खाया जाने लगा तो उनके कोमल अंगमें तीव्र वेदना हुई। जैसे दाह्यवस्तु अग्नि मिलने पर प्रदीप्तताको प्राप्त होती है, उसही भाँति सुकुमालजीने उस वेदना और परिषह उपसर्गको जीतने चिदानंद स्वभावकी अखंडता व पूर्णताके ध्यानरूप बारह भावनाओंका चिंतन किया। जिससे उनका वैराग्य और आत्मशुद्धिकी अधिक प्रचंडताको प्राप्त हुई।

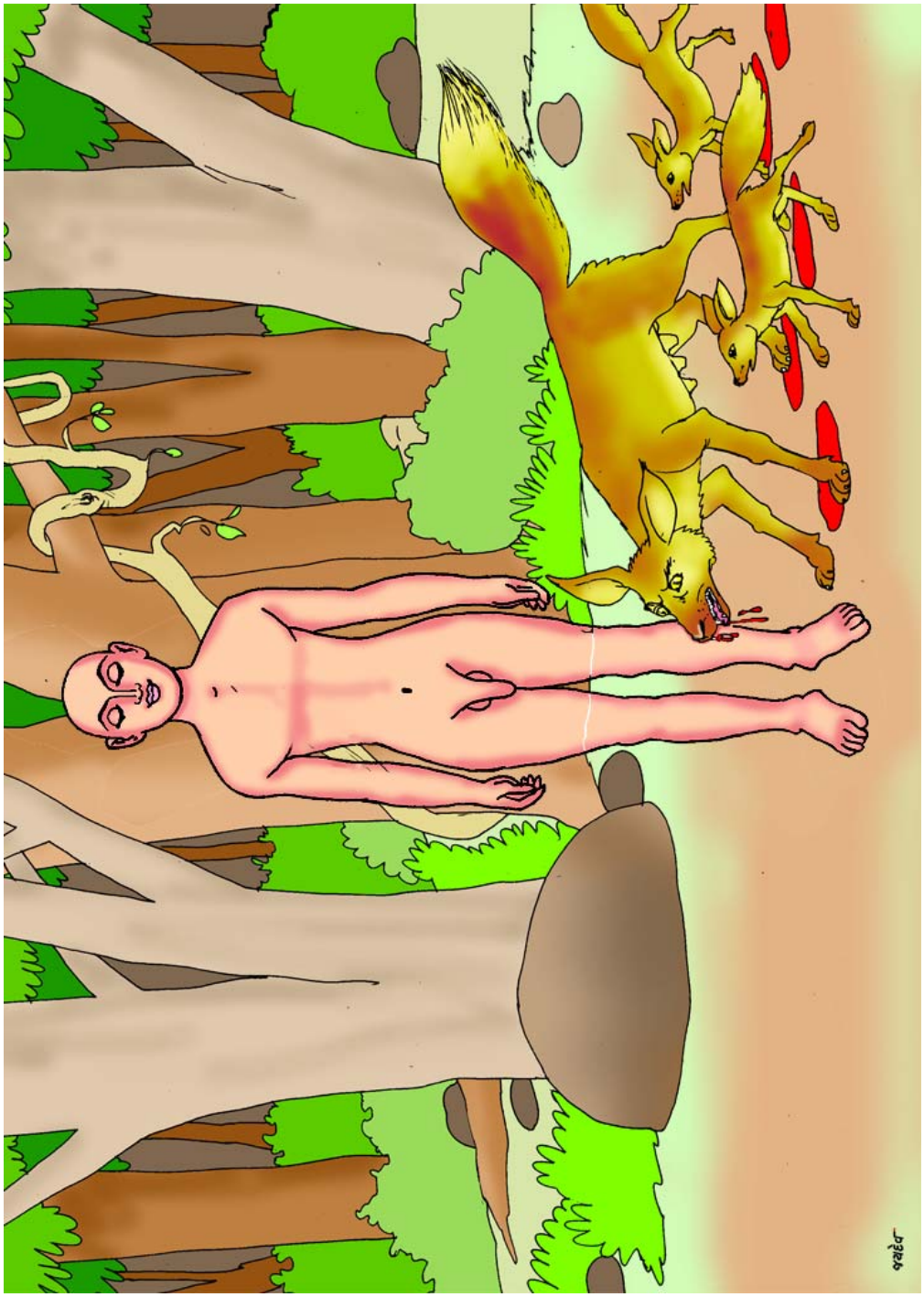

सुकुमार मुनिको पाँवसे खाते स्यालनी व उसके बच्चे

इस प्रकार इन अनित्यादि बारहभावनाओंके चिंतनरूप, निज चैतन्य व सुखरूप स्वभावके ध्यानसे श्री सुकुमालस्वामीके हृदयमें वीतरागभाव और भी महान दृढ़तम हो गया। उन्होंने अपनी आत्माको शरीरसे सर्वथा भिन्न जानकर निर्विकल्प चित्तसे परम धीर वीरताके साथ उत्कृष्ट आत्मध्यान किया। वे अपनी आत्माके ध्यानसे स्यालनी द्वारा दी हुई वेदनाको न गिनते हुए चित्तमें खेद न करते हुए, निजस्वभावके बलसे उपसर्गमें चलायमान नहीं हुए और वज्रके समान अभेद्य और अचल ही बने रहे।

उस पापिनी स्यालनीने अपने बच्चोंके साथ साथ श्री सुकुमालस्वामीके दोनों घूटने तक पाँव खा डाले और दूसरे दिन थोड़ा थोड़ा करके दोनों जाँधे खा डाली और तीसरे दिन आधीरातके समय तक अपने बलसे पेटको चीर फाड़कर खा डाला। शरीरके अन्दर जो आँते थी उनको भी मुँहसे खींचकर धीरे धीरे खाना प्रारंभ कर दिया। इस प्रकार सुकुमालस्वामीने उत्तम प्रकारसे चारों आराधनाओंका ध्यान करते करते, धर्मध्यान तथा समाधिपूर्वक यत्नसे अपने प्राण छोड़े। अपनी बड़ी भारी योगशक्तिसे बहुत पापकर्मोंको नष्ट कर, परम पुण्यके बलसे मुक्तिरानीकी सखी स्वरूप, मनोहर, संपूर्णकार्योंकी सिद्धिको देनेवाली 'सर्वार्थसिद्धि' नामक स्वर्गभूमि श्री सुकुमाल मुनिराजने प्राप्त की।

घोर उपसर्गको जीतनेवाले सुकुमाल स्वामीके माहात्म्यसे स्वर्गलोकमें देवों और इन्द्रोंके आसन कंपायमान हो गये। जब इन्द्र और देवोंने उन महामुनि सुकुमालका कालधर्मका ज्ञान किया तो वे आश्चर्यसहित हो हर्षपूर्वक स्तुति करने लगे। अहो! गुणोंकी खान, धीर, वीर, तीनलोकसे वंदनीय, ज्ञानी, भव्यजीवोंमें अग्रसर, पूजनीय श्री सुकुमालस्वामी महामुनि धैर्यशाली हैं। जिन्होंने इतने कोमल शरीर होते हुए भी इतने कठिन घोर उपसर्गको जीता। इन्द्र देवों सहित सुकुमालजीकी पूजाके लिये आये। देवदुंदुभियाँ बजीं, जय जय आदि शब्दोंसे आकाश गुंजायमान हो गया। इस प्रकार बड़े हर्षके साथ देवों सहित पृथ्वीतल पर आये। इन्द्रने आकर बड़ी भारी विभूति और भक्तिसे दिव्य सामग्री द्वारा सुकुमाल स्वामीके शरीरकी पूजा की। जब देवों तथा इन्द्रों द्वारा जय जय शब्द और नाना प्रकारके वादित्रोंके शब्द सुने, तब सुकुमालस्वामीकी माता यशोभद्रा तथा बन्धुओं आदिने यह जाना, कि उन सुकुमाल योगिराजने तप ग्रहण करके समाधिमरण किया। वह माता आदि जो सुकुमाल स्वामीके वियोगसे आर्त्तध्यान और रुदन कर रहे थे। वे इन्द्र और देवादि जय जय कर रहे देख आनन्दपूर्वक उन सुकुमाल स्वामीकी स्तुति करने लगे।

ऐसे सुकुमालस्वामी मुनिन्द्रको त्रिकाल कोटि-कोटि वंदन। वे सदा जयवंत हो और हमारे पर निरन्तर कृपा बरसायें।

भगवान नेमिनाथके पास दीक्षा धारण करते पांच पांडव, आर्यिक राजमतीके पास दीक्षा धारण करती सुभद्रा, द्रौपदी आदि रानियाँ

पांच पांडव

लोहमयी आभूषण गढ़के, ताते कर पहराये;
पांचों पांडव मुनिके तन में, तो भी नाहिं चिगाये.
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी;
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु-महोत्सव भारी.

पाण्डवगण श्री नेमिनाथ प्रभुके समवसरणमें उनके मुखसे अपने पूर्व-भवके वृत्तांतको सुनकर बहुत प्रसन्न हुए तथा उनका उद्वेग एकदम शमन हो गया।

इसके बाद परमादरणीय श्री नेमिनाथ भगवानको नमस्कार करके पाण्डवोंने कहा—'प्रभो! इस संसारमें प्राणी अपने क्रूर कर्मोंके द्वारा अनेक प्रकारके दुःख-दावानलमें दग्ध हो रहे हैं। यह सब भीषण अन्याय, जघन्य कर्मोंमें ओत-प्रोत रहनेके कारण होता है। यदि आपके परम पुनीत चरणोंका आश्रय, सांसारिक भव्यात्माओंको मिल जाय, तो शीघ्र ही वे संसाररूपी महासमुद्रके पार उतर जायें। भगवन्! पाप कर्मोंने हम लोगोंको निविड़ अन्धकारमें ढँक रखा है। कृपया, आप धर्म-रूपी दीपक दिखा कर इस दुर्भेद्य अन्धकारसे हमारी रक्षा करें। हमारे कल्याणके मार्गको आप सुगम एवं निर्बाध बना दें, जिससे हम लोग अनायास ही संसार-सागरको पार कर जायें।'

इसके बाद पाण्डवोंने भगवती जिन-दीक्षा ग्रहण करनेके लिए भगवानसे प्रार्थना की एवं दीक्षा धारण कर लेनेको तैयार हो गये। अपनी राज्य-सत्ता सुयोग्य पुत्रोंके हाथमें सौंप दी। तत्पश्चात् क्षेत्र, वस्तु इत्यादि बाह्य तथा मिथ्यात्व आदि आभ्यन्तर परिग्रहका त्याग कर, केशलोंच किया एवं तेरह प्रकारके चारित्रोंको धारण करके जिन-दीक्षा धारण कर ली। पाण्डवोंके साथ कुन्ती, सुभद्रा, माद्री, द्रौपदी इत्यादि सम्भ्रान्त(प्रतिष्ठित) महिलाओंने भी राजमती आर्यिकाके पास जाकर दीक्षाके लिए प्रार्थना की एवं केश-लौंच करके जिन-दीक्षा(आर्यिकाव्रत) लेकर संयम धारण किया।

तत्पश्चात् युधिष्ठिरने बिना किसी प्रकारके कष्टोंको सहे, अति दुर्द्धर(तीन कषायरूप) मोहरूपी शत्रुको अपने आधीन कर लिया। भीमसेनने भी(उसी भांति उस) मोहको जीत लिया, अर्जुनने धैर्यपूर्वक मुक्तिरूपी-पत्नीको पा लेनेका संकल्प किया एवं माद्रीके दोनों पुत्रोंने भी द्रव्य, पर्याय आदिका ज्ञान कर परिग्रहको नष्ट कर दिया एवं नासिकाके अग्रभाग पर ध्यान लगाकर उग्र तप साधनामें लीन हो गये। पाण्डवोंने दृढ़तापूर्वक पाँच महाव्रत, पाँच

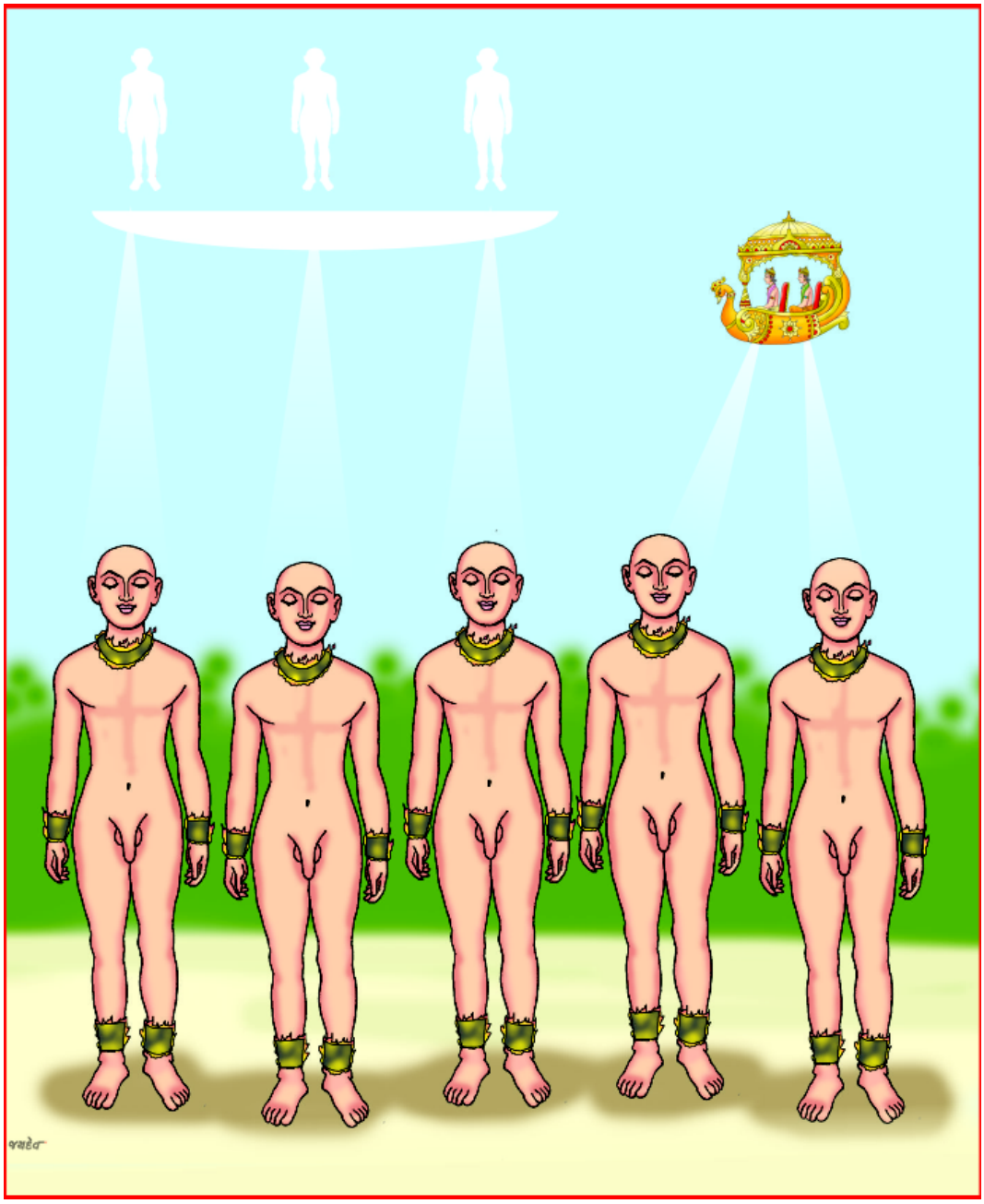

शत्रुंजय पर्वत पर उपसर्ग सह ध्यान धरते पांच पांडव

समिति, पंचेन्द्रियोंकी वशता, केशलोंच करना, नग्न रहना, स्नान नहीं करना, पृथ्वी पर सोना, दाँत साफ नहीं करना, दिनमें एक बार खड़े-खड़े ही आहार लेना इत्यादि मूल गुणोंका पालन किया। धर्म-ध्यान करते हुए उग्र तपोंको तपा एवं अपने पूर्व कर्मोंका नाश किया। उन्होंने छः-छः, सात-सात उपवास किये एवं पारणेके दिन केवल अल्प आहार ग्रहण कर अवमौदर्य किया। अपने उग्र तपके प्रभावसे कर्मोंके बलको अत्यंत नष्ट कर दिया।

तपश्चर्याका अलौकिक प्रभाव है। तप साधनासे पुरुषके लिए कोई वस्तु अलभ्य नहीं रहती। पाण्डव बड़े विचारवान एवं धर्मात्मा थे। सभी प्राणि-मात्रसे उन्हें मैत्री-भाव रहता था। वे अपनेसे अधिक गुणवालोंके साथ प्रमोद-भाव, दरिद्र एवं दुःखी जीवोंसे करुणा-भाव एवं विरुद्ध चेष्टावालोंसे मध्यस्थ भाव रखते थे। वे द्वादश भावनाओंका चिन्तवन कर सदैव आत्मभावनाओंमें ही लीन रहते थे। पाण्डवोंने शुद्ध-बुद्ध, निरञ्जन एवं चिन्मय आत्मामें लीन रहकर धैर्यके साथ घोर उपसर्गोंको सहा एवं परीषहोंको जीता। इस प्रकार विहार करते तथा तप साधना करते हुए उनका बहुत समय व्यतीत हो गया। अन्तमें नेमिनाथ भगवानके दर्शन करने पांडव सौराष्ट्रमें शत्रुंजय तक पहँचे। वहाँ भगवानके मोक्ष पधारनेके समाचार मिलते वे वैराग्यमें डूब गये व शत्रुंजय पहाड़ पर ध्यान करने लगे। अत्यन्त अल्प समयमें ही वे लोग कठिन-से-कठिन उपसर्गोंको सहनेके लिए सहर्ष प्रस्तुत हो गये। इसके बाद शरीरसे पृथक् अक्षय परमात्माका उन्होंने ध्यान किया। तात्पर्य यह कि पाण्डव परम तपस्वी एवं परमयोगी हो गये।

एक दिनकी बात है, कि सहसा वहाँ पर दुर्योधनका भानजा क्रूर चित्त 'कुर्मुधर' अपरनाम 'यवर्धन' आया। वह जैसा, कि उसके नामसे ज्ञात होता है, वैसा ही वह क्रूर था। जब उसने पाण्डवोंको देखा, तब उसके मनमें पाण्डवोंको मार डालनेकी इच्छा जाग्रत हुई। उसने सोचा , कि ये लोग हमारे मामा (दुर्योधन) को मारकर यहाँ आ छिपे हैं। यदि किसी उपायसे इनका काम तमाम कर दिया जाय तो अच्छा हो। अवसर भी अच्छा है। इस समय सभी पाण्डव ध्यानमें मग्न हैं। युद्ध भी नहीं कर सकेंगे। समस्त बदला आज ही मैं चुका लूँगा।

ऐसा सोचकर उसने लोहेके आभूषण तैयार करवाये तथा उन आभूषणोंको अग्निमें खूब तपाकर पाण्डवोंके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें पहना दिया। उन मुनियों (पाण्डवों)के शरीरमें जब लाल-तपे हुए लोहेके गहने पहनाये गये, तब उनका शरीर काष्ठके समान जलने लगा तथा उससे धुआँ निकलने लगा। पाण्डवोंने उग्र वेदना सही तथा जलते हुए शरीरको दुर्लक्ष कर

आत्मध्यानका आश्रय लिया। अरहन्त, सिद्ध, साधु एवं सत्यधर्मके ध्यानसे उन्होंने आत्माका विशेष आश्रय लिया। आग बढ़ती गयी तथा महा भयङ्कररूपमें बदल गयी। उन्होंने सोचा, कि अग्नि मूर्त्तिमान है, इसलिए मूर्तिमान शरीरको ही जला सकती है—आत्माको नहीं। आत्मा तो निरञ्जन है। आत्माकी स्थिति तीन प्रकारके कर्मोंसे पृथक् है। आत्मा देहके बराबर होते हुए भी उससे नितान्त भिन्न है। आत्म व परके स्वरूपका विचार करते हुए पाण्डवगण कर्म-शत्रुके विनाशके लिए अनित्यानुप्रेक्षा आदि द्वादश अनुप्रेक्षाओंका चिन्तवन करने लगे। द्वादश अनुप्रेक्षाओंके चिन्तवन करते-करते पांडवोंका वैराग्य (वीतरागता) निश्चितरूपेण स्थिर-अचल हो गया।

पर्याप्त कारण उपस्थित हो जाने पर उचित परिवर्तन हो ही जाता है एवं वह परिवर्तन श्रेष्ठ पुरुषोंके शील-स्वभावको स्थिर एवं अपरिवर्तनीय बना देता है। यही बात यहाँ पर भी हुई। सभी पांडवोंने अपने शरीरको तृण जैसा एकदम तुच्छ समझा। मनोयोगके एकान्त आश्रयसे अत्यल्पकालमें तीन पांडव क्षपकश्रेणी पर आरूढ हुए। उन तीनोंने निर्विकल्प मनसे शुद्ध-अन्तःकरणसे आत्माका ध्यान किया। अधःकरण आदि करणोंरूप आराधना करते हुए अपूर्वकरण पर जा पहुँचे। इसके बाद उन्होंने अनिवृत्ति-करणको प्राप्त किया। इस प्रकार युधिष्ठिर, भीम एवं अर्जुन सभी घाती-अघाती कर्म प्रकृतियोंका नाश कर 'सिद्ध' हो गये। उन्हें सम्यक्त्व आदि आठ गुण प्राप्त हुए।

जब देवताओंको ज्ञात हुआ, कि तीन पाण्डवोंको एक साथ केवलज्ञान तथा निर्वाण-कल्याण प्राप्त हो गया है, तब वे सब देव वहाँ पर एकत्रित हुए तथा तदुपलक्षमें एक निर्वाण महोत्सव मनाया।

शेष दोनों भ्राता नकुल तथा सहदेव मनमें कुछ अस्थिरता रह जानेके कारण उपसर्गोंको सहते हुए शरीर परित्याग कर स्वर्गलोकमें सर्वार्थ-सिद्धिके अधिकारी हुए तथा अहमिन्द्र पद प्राप्त किया। वहाँ ३३ सागर पर्यन्त अतुलनीय स्वर्गसुखका उपभोग करेंगे। इसके बाद चयकर वे मनुष्य होंगे तथा आत्म-साधना कर कठिन तपके द्वारा मोक्ष प्राप्त करेंगे।

सिद्ध व महा तपस्वी मुनिन्द्र पाण्डवोंको कोटि-कोटि वन्दन।

शील शिरोमणी सेठ सुदर्शन

जब सेठ सुदर्शनको मृषा दोष लगाया;
रानीके कहे भूपने सूलीपै चढाया;
उस वक्त तुम्हें सेठने निज ध्यानमें ध्याया,
सूलीसे उतार उसको सिंहासनपै बिठाया.

बहुत वर्षो पूर्व, एक मुनिराज निर्जन वनमें शिला पर योगमुद्रामें स्थित थे। आगमके प्रकाशमें अंतःचक्षुके द्वारा वे अपने आत्मध्यानपूर्वक छट्ठे-सातवें गुणस्थानमें झूल रहे थे। ऐसी भयंकर शीत ऋतुमें वे नग्न दिगम्बर मुनि धैर्यरूपी कंबल ओढ़े हुए थे और आत्माको शरीरसे भिन्न समझकर मनको एकाग्र करनेके पुरुषार्थमें तन्मय थे। उधर एक ग्वाला निकला था। खुले बदनमें बैठे महासाधुको देखकर मनमें सोचने लगा कि—

'अहो! ये महात्मा कैसे हैं? इनके पास न लंगोटी है, न चादर। ऐसी भयंकर ठंढीमें जहाँ घरमें बैठकर कंबलमें मुँह छुपाकर भी दाँत कड़-कड़ बजते हैं, बाहर निकलते ही हाथ पैर कांपते हैं। ओह! सूर्य अस्त हो चुका है, रात्रि पिशाचनी अपने अंधेरेसे सबको ग्रसित करनेवाली है। अभी कुछ ही क्षण बाद पसारा हुआ हाथ नहीं दीखेगा। ठंढी-ठंढी हवा चल रही है, अभी तुषारके कण गिरने लगेंगे और देखते ही देखते बरसातके समान वृक्षोंके पत्तोंसे पानी टपकने लगेगा। सुबह होने तक कुहरा छाया रहेगा। बिना वस्त्रके ये बेचारे महात्मा कैसे जीवित रह सकेंगे?'

नाना तरहके विचारोंके झूलेमें झूलता वह ग्वाला कुछ क्षण तक वहाँ स्तब्ध खड़ा रहा। पुनः देखता है, कि मेरी गाय-भैंस तो बहुत दूर निकल गई थी। जल्दी-जल्दी पैर उठाकर शहरकी ओर बढ़ा। सेठजीको गौशालामें गाय भैंसोंको पहुँचाकर, घर पहुँचकर कुछ लकड़ियाँ और आग लेकर मुनिराजके निकट आया। भक्तिसे प्रणाम किया। पुनः मुनिराजके पासमें ही बैठकर लकड़ियाँ जला-जलाकर स्वयं तापता रहा। इस प्रकारसे वह रातभर जागता हुआ, मुनिके पास अग्नि जलाता हुआ, उनकी शीत बाधाको दूर करनेमें लगा रहा। उसे स्वयं ठंड लग रही थी या नहीं, उसका भान ही नहीं था। बस! एक ही धुन थी, कि

जाड़ेकी कड़ी ठंडीमें मुनिको ध्यान करते देख उन्हें ठंडी न लग जाय इस हेतुसे मुनिराजकी चारों ओर अग्निसे ताप करता दयालु ग्वाला

किसी भी तरहसे मुनिराजको ठंढ न लग जाय। पूर्व दिशामें सूर्य उदित हो चुका था, किंतु ऐसा प्रतीत होता था, कि मानों सूर्यदेवताको भी ठंढ लग रही थी। इसलिए कोहरारूपी कंबलसे अपना मुँह ढका था। धीरे-धीरे सूर्यदेवताने अपना प्रकाश व प्रताप एक साथ भूमंडल पर फैला दिया। मुनिराज अपना ध्यान समाप्त कर, उनके निकट भव्य ग्वालेकी ओर देखने लगे। उसे उपदेश भी दिया कि : 'भद्र! मैं तुम्हें एक मंत्र देता हूँ, तुम अपने हर एक कार्योंमें प्रथम ही यह मंत्र बोलना–'णमो अरिहंताणं'।

ग्वाला हाथ जोड़कर गुरुका प्रसाद समझते हुए बड़ी श्रद्धासे उस मंत्रको सुनता था। पुनः उच्चारण करता था। 'णमो अरिहंताणं.....णमो अरिहंताणं.....णमो अरिहंताणं।'

पुनः मुनिराज कहने लगे—'भव्य! यह मंत्र तुम्हें संसार समुद्रसे पार कर देगा, इसलिए तुम इसे कभी मत छोड़ना, हमेशा ही इसका उच्चारण करते रहना।'

वह ग्वाला भी प्रसन्न होकर बार-बार गुरुचरणोंमें प्रणाम करता रहा और मंत्र उच्चारण करता जाता था। मुनि उसे आशीर्वाद देकर स्वयं भी 'णमो अरहंताणं' मंत्रका उच्चारण करते हुए आकाशमार्गसे विहार कर गये।

'अहो! यह मंत्र कितना चमत्कारी है! देखो तो सही! महात्माजी इसी मंत्रको बोलते हुए आकाशमें उड़ते हुए चले गये।'

इस प्रसंगसे उसे इस मंत्र पर और भी अधिक श्रद्धा हो गई और वह प्रातःकालमें इसी मंत्रको जपता हुआ अपने घर आ गया। स्नान, भोजन आदि प्रत्येक काम करते हुए, वह ग्वाला इस मंत्रका उच्चारण कर रहा था। सेठ वृषभदासने देखा कि घरका प्रत्येक कार्य करते समय यह मेरा नौकर आज 'णमो अरहंताणम्' यह मंत्र बोल रहा था। उन्होंने प्रसन्न होकर उसे पूछा :–'सुभग! तुझे यह मंत्र किसने दिया?'

ग्वालाने कहा—सेठजी! मैंने कल रात जंगलमें एक महात्माकी सेवा की थी। वे बिलकुल नग्न बदन बैठे हुए थे। मैंने उनके पास अग्नि जला-जलाकर उनकी ठँढ दूर कर दी थी। वे हमें यह प्रसाद दे गये थे। उन्होंने कहा था, कि 'तू इसे घरके हर काम करते समय भी बोलते रहना; छोड़ना नहीं,' इसलिए आज मैं सभी काम करते समय इस मंत्रको बोल रहा हूँ।'

सेठजीने कहा—'बहुत अच्छा, सुभग! तू बड़ा भाग्यशाली है, कि तूझे यह गुरु प्रसाद मिला है। सचमुचमें इस मंत्रसे प्रत्येक जीव संसार समुद्र पार कर सकता है। अच्छा

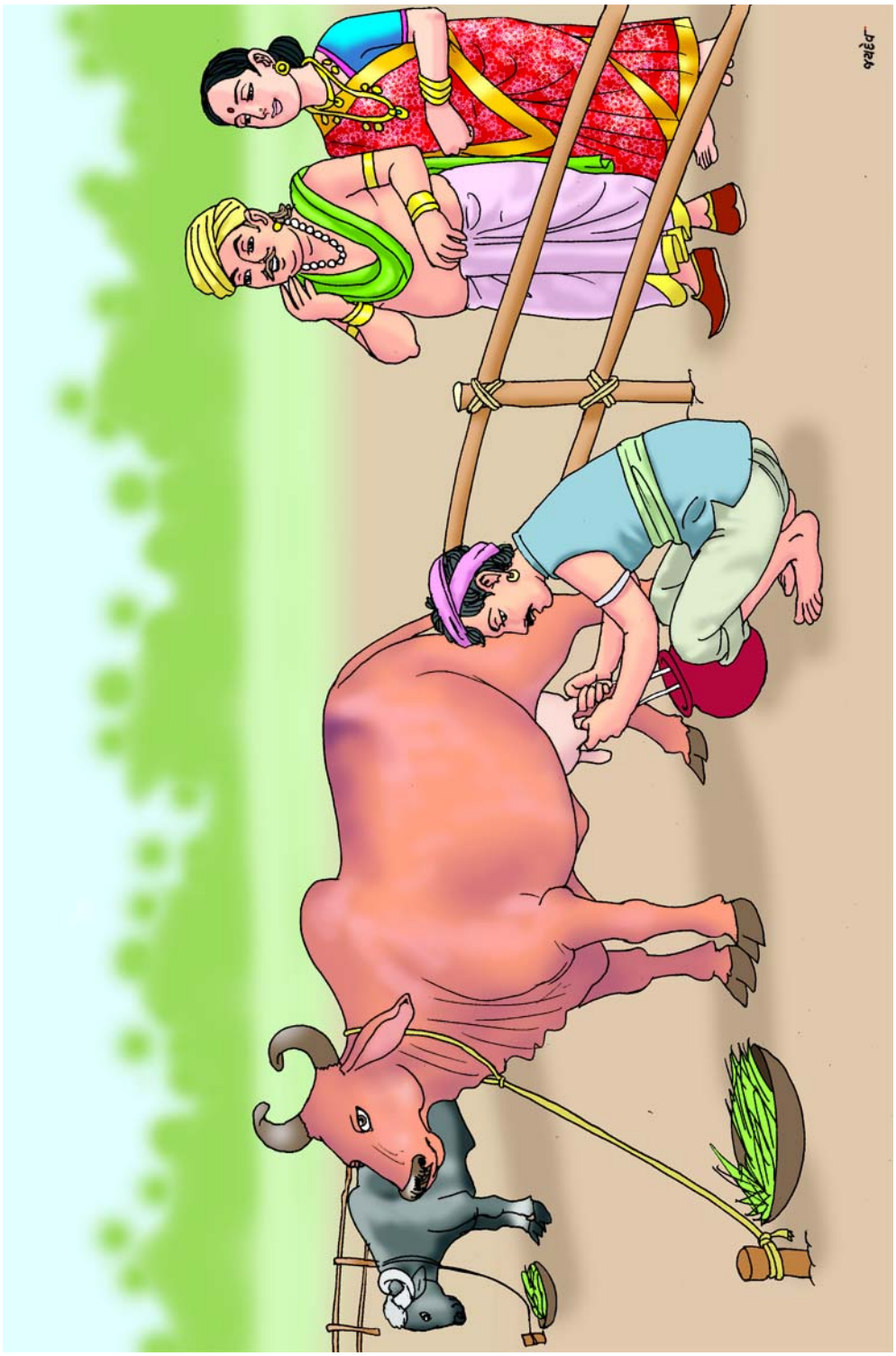

सेठकी गाय आदि दूते समय 'नमो अरिहंताणं बोलते हुए' ग्वालेको देखते सेठ-सेठानी

देख ! आज तू उस सामनेवाले मकानमें आजा। वहीं रहना, अपनी टूटी-फूटी झोपड़ीका मोह छोड़ दे।'

ग्वाला मन ही मन सोचने लगता है—'अरे! आज सेठजी मेरे ऊपर इतने प्रसन्न हो रहे हैं!...मुझे अपना पक्का मकान रहनेके लिए दे रहे हैं! अहो! इस मंत्रका फल तो मुझे आज ही मिल गया।'

सेठ वृषभदास सेठानी जिनमतीसे कहते हैं—'देखो, यह ग्वाला प्रत्येक कार्य करते समय महामंत्रके प्रथमपदका उच्चारण कर रहा है। यह कोई होनहार जीव दिखता है।....अब तुम इसे प्रतिदिन अच्छा-अच्छा भोजन देते रहना।'

सेठानी कहती है—'आज मैं सुबहसे देख रही हूँ, यह नौकर बड़ी भक्तिसे मंत्र बोल रहा है। इसका भविष्य बहुत ही उज्वल दिख रहा है।'

सेठजी भोजन आदिसे निवृत्त हो चले गये। ग्वाला भी खुशी-खुशी सेठजीके बताये हुए मकानमें सपरिवार आकर रहने लगा। खूब रुचिसे घरकी व गाय-भैंसोंकी संभाल करता हुआ, अपना समय व्यतीत कर रहा था।

एक दिन जंगलमें गाय-भैंसोंको चरा रहा था, कि अकस्मात कुछ भैंसे नदीके उस पार निकल गई। उन्हें लानेके लिए वह नदीमें कूद पड़ा। कूदते समय भी 'णमो अरहंताणं'

भैसोंको नदीके पार देख उन्हें ले आने नदीमें जाते समय ग्वालेके पेटमें पैनी लकड़ीका घुसना

मंत्रका उच्चारण करता रहता था। अकस्मात् नदीमें कूदते ही उसके पेटमें एक पैनी लकड़ी घुस गई और उसके प्राण निकल गये। मरते समय महामंत्रका उच्चारण करते-करते वह शांतिसे इस नश्वर कायाको छोड़कर परलोक चला गया। इधर समय पर गाय-भैंस सेठजीके घर वापस आ गई। ग्वालेको न देखकर, सेठजी उसकी खोज करने लगे। वह मर गया, जानकर उसकी पत्नी रोना-धोना करने लगी। सेठ वृषभदास सबको सान्त्वना देते हुए, उसके गुणोंका विचार करते हुए घर गये।

इधर ग्वाला पवित्र मंत्रके प्रभावसे मनमें सेठका पुत्र बननेकी इच्छा होनेसे, मरनेके बाद उक्त सेठका पुत्र हुआ। उसका नाम सुदर्शन रखा गया। सुदर्शनके जन्म लेते ही सेठ वृषभदत्तकी दिन दुनी, रात चौगुनी वृद्धि हुई। उनकी इज्जत, धन, वैभव तथा सम्पत्ति बेहद बढ़ गई। सच है :—

'पुण्यवान जो नर होते हैं, यश वैभव-सुख पाते हैं।
जहाँ जहाँ पर वे जाते हैं–सुख से समय बिताते हैं।'

कुछ दिनोंके बाद, सुदर्शन सयाना हो चला। उस ही नगरीमें सागरदत्त सेठ रहते थे। उसकी स्त्रीका नाम सागरसेना था। मनोरमा उसकी लडकी थी। वह सुन्दरी थी। उसीके साथ सुदर्शनका विवाह हुआ। सुदर्शनने गृहस्थ जीवनमें प्रवेश किया। युगल-जोड़ी आनन्दसे जीवन बिताने लगी।

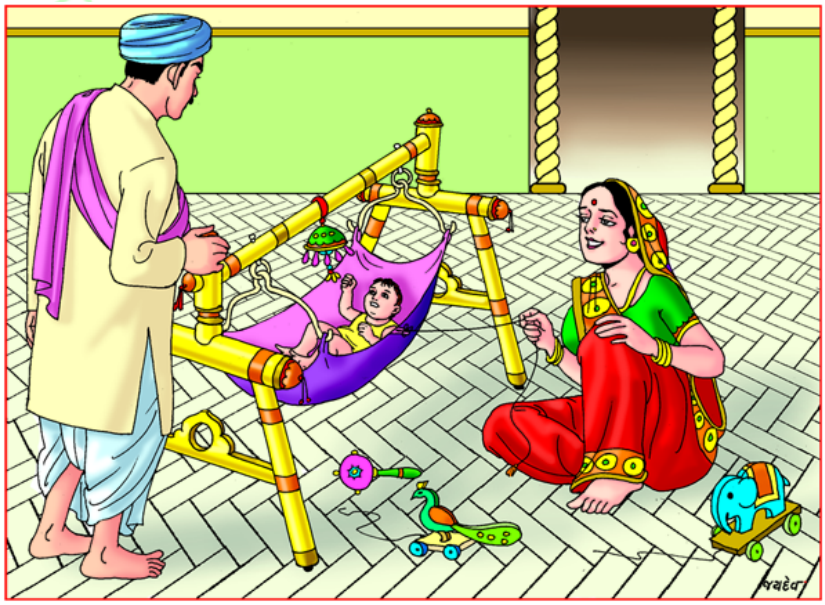

'णमो अरिहंताणं'के पाठके बल ग्वालेका सेठजीके 'सुदर्शन' नामक पुत्र होना

एक दिन सेठ वृषभदत्त समाधिगुप्त महामुनिके दर्शनके लिए गये। उनपर मुनिराजके धर्मोपदेशका इतना गहरा प्रभाव पड़ा, कि वे समस्त धन-वैभव सुख छोड़, दीक्षा लेकर तपस्वी हो गये। अब, सुदर्शनके ऊपर गृह, परिवार, गृहस्थीका समूचा भार आ पड़ा, सुदर्शनकी ख्याति फैलने लगी, राज-दरबार और सर्व साधारण तक उसे चाहने लगे। सुदर्शन भी सांसारिक कामोंमें कुशल था, साथ ही साथ उसने जिन-भगवानकी भक्तिमें अपना अधिकांश समय देना शुरू किया। तबसे उसकी गणना धार्मिक पुरुषोंमें होने लगी। सभी उसके सदाचार, श्रावक-व्रत-विधान तथा दान-पुण्य कर्मसे उसकी प्रशंसा करने लगे। वह भी ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर सदाचार पूर्ण जीवन बिताता था।

इस प्रकार राज दरबारमें उसका सन्मान होने लगा। मगधाधिपति गजवाहन उसे खूब मानते थे। एक दिन महाराजा सुदर्शनके साथ उपवनमें टहल रहे थे। महाराज गजवाहनकी रानी भी साथमें थी। रानी सेठ सुदर्शनके रूप-सौन्दर्य देखकर मोहित हो गई। उसने अपनी एक दासीसे सुदर्शनके सम्बन्धमें पूछताछ की। दासीने हाथ जोड़कर कहा–''महारानी, वे आपकी नगरीके प्रधान सेठके पुत्र हैं। इनका नाम सुदर्शन है।'' रानीने कहा—''तब तो कितने आनन्दकी बात है, कि ये राज्य-रत्न हैं; लेकिन इनका सौन्दर्य अपूर्व है। मैंने आज तक, इनके समान सुन्दर पुरुष नहीं देखा है, अहा! इनको देखते ही मेरा मन आकर्षित हो जाता है। मुझे भ्रम है, कि स्वर्गके देव इतने सुन्दर होते हैं या नहीं? अच्छा, तुम तो कहो, कि सेठ कैसे लगते हैं? क्या तुमने इनके समान किसी पुरुषको इतना सुन्दर देखा है।'' दासीने ठकुरसुहाती बात कही,—''महारानीजी! आपका अनुमान ठीक है। पृथ्वी क्या त्रिभुवनभरमें इनके समान सुन्दर प्रभावशाली जवान मिलता कहाँ है? ये सचमुचमें सुन्दर पुरुषोंके सरताज हैं। रानीने दासीको अपने मनके अनुकूल पाकर कहा,—''अच्छा, क्या तू एक कार्य कर सकती है? सच जानो, मैंने तुझे अपनी अन्तरङ्ग दासी समझकर कहा है, देखना यह बात किसी पर भी प्रकट न हो।' दासीने कहा—''मैं तो आपकी दासी हूँ, कहिये क्या आज्ञा है? मैं पूरा करनेके लिए तैयार हूँ।''

रानीने कहा : 'तू कह, कि मैं कार्य कर दूँगी, तब मैं कहूँगी'। दासीने चौंककर कहा, ''महारानीजी, आप विश्वास रखें, कि : मैं अपने बसकी बात पूर्ण करनेको प्रस्तुत हूँ, मुझसे जहाँ तक बन पड़ेगा, मैं आज्ञापालन करनेसे मुंह न मोड़ूँगी।'' उस समय रानी अपनी भावी आशा पर फूली नहीं समायी। वह भविष्यकी सुन्दर-कल्पना करने लगी। इतनेमें रानी व्यग्रता प्रकट करती हुई कहने लगी, ''देखो, मैं इस नव जवान पर तन-मनसे मोहित हूँ। मैंने जबसे इसे देखा है, तबसे यह मेरी नजरोंमें समा गया है। बस, तू ऐसा प्रयत्न

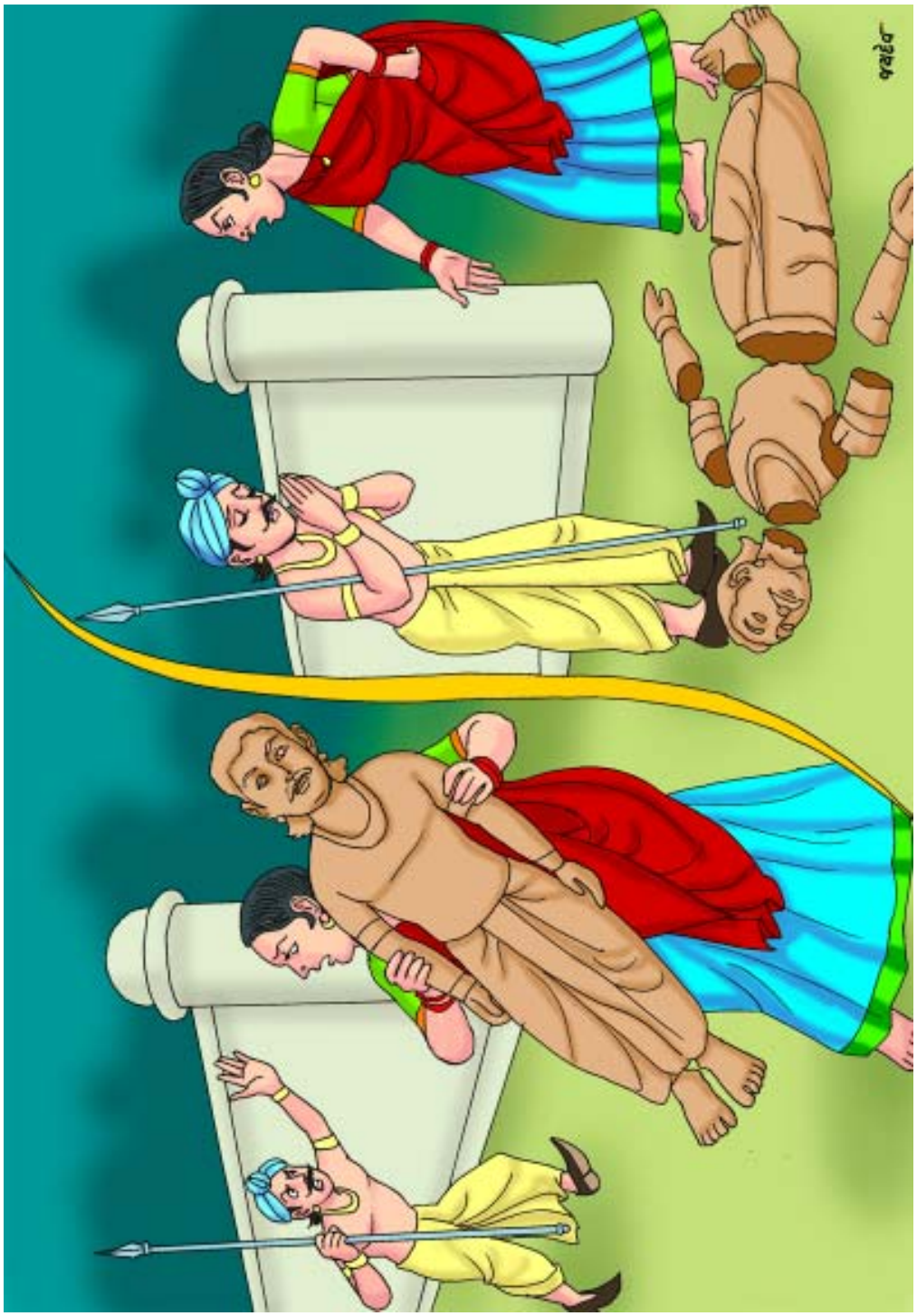

(1) रानीकी दासीका मिट्टीके पुतलेको महलमें ले जाते समय पहेरदार द्वारा रोकना (2) पहेरदार द्वारा रोकने पर दासीका पूतला वहीं पटकनेसे पूतले का टूटनेसे पहेरदारकी शिकायत रानीसे करनेका कहती दासी

कर, कि यह सुन्दर सेठ मेरे पास आवे। नहीं तो मेरा जीना असम्भव है देखना, यह गुप्त बात तेरे सिवाय कोई दूसरा न जाने, नहीं तो....!'' कहकर रानी चूप हो गयी। बस, दासी फूलकर कुप्पा हो गयी। उसने अपने मनमें विचार किया, कि 'मेरा भाग्य भी चमक जायेगा, मैं मालामाल हो जाऊँगी। रानी तो काममें पीड़ित हो रही है, यह मेरे चंगुलमें है ही। अतः उसने कहा, 'आप इतनी-सी बातके लिए क्यों व्यर्थमें परेशान हो रही हैं। मैं बातकी बातमें आपके दिलके अरमान पूर्ण करती हूँ। संसारमें कौन ऐसी चीज है, जो आपको न मिल सके। आप विश्वास रखें, घबड़ायें नहीं, आपके मनकी मुराद पूर्ण होगी और जल्दी पूर्ण होगी।'

उधर सुदर्शन सेठने सम्यग्दर्शन सह श्रावक-व्रत ग्रहण किए थे। वे संसारमें रहते हुए भी उससे स्वतन्त्र होना चाहते थे। इसलिए वह कभी-कभी ध्यानमें लीन रहते थे। वह अष्टमी और चतुर्दशी तिथियोंमें अक्सर स्मशान-भूमिमें जाया करते थे। वह रात्रिके समय स्मशानमें जाते और ध्यानमें लीन रहते। इधर रानीकी दासी जो सुदर्शनको एकान्तमें पानेका मौका ढूंढ रही थी, उसे मौका मिल गया,

सबसे पहिले उसने पहेरेदारोंके ऊपर प्रभाव दिखाने हेतु एक षडयन्त्र रचा। ''उसने कुम्हारसे मनुष्यके आकारके समान मिट्टीकी मूर्ति बनवाई। एक दिन ऐसी घटना घटी। वह मिट्टीकी मूर्ति महलमें ले जाने लगी, पहरेदारोंने उसे महलमें नहीं जाने दिया। दासी हिम्मत कर आगे बढ़ी, किन्तु पहेरेदारोंने उसे रोक लिया। इस पर गुस्सेमें आकर मूर्तिको जमीन पर पटक दी। मिट्टीकी मूर्ति जमीन पर गिरते ही चूर-चूर हो गयी। अब, दासीने क्रोध दिखलाकर कड़े शब्दोंमें कहा,—''दुष्टो! क्या तुम्हें नहीं मालूम है, कि महारानीने नर-व्रत धारण किया है? जिसमें नरके समान मिट्टीके पुतलेकी आवश्यकता थी। जिसे आज मैं ले जा रही थी, किन्तु, तुम लोगोंने मूर्ति तोड़ दी। अब, महारानीका व्रत कैसे पूर्ण होगा? वे बिना भोजन किए रहेंगी, मैं अभी उनके पास जाकर सारी बातें कहकर तुम्हें दण्डित कराती हूँ, तुम्हारे दुष्कर्मोंका अभी बदला चुकाती हूँ।'' पहरेदार भयभीत हो गये। वे दासीसे हाथ जोड़कर अपराधको क्षमा कराने लगे। सब लोग कहने लगे, क्षमा करो, महारानीसे हमें दण्ड न दिलाओ।''

दासीने कहा ''अच्छा, मैं इस बार क्षमा करती हूँ, परन्तु तुम लोगोंने अपराध तो बड़ा भारी किया है, मगर तुम्हारी हालत देखकर मुझे दया आती है। अगर तुमने फिर गलती की, तो महारानीके नर-व्रतकी पूर्तिके लिए मुझे कोई चीज या अगर कोई

आदमीकी ही आवश्यकता पड़ी, तब तुम लोगोंने रुकावट डाली तब क्या होगा?

पहरेदारोंने हाथ जोड़ते हुए कहा—''इस बार क्षमा प्रदान कर दो। दुबारा हम लोग तुम्हारे काममें दखल नहीं देंगे। तुम आने जानेमें स्वतन्त्र हो।''

दासीने डाँटकर कहा, ''अच्छा, इस बार तो मैं माफ कर देती हूँ, किन्तु आइन्देसे ख्याल रखना। इस प्रकारकी गुस्ताखी कर हमारे कार्यमें बाधा न डालना, मैं रानीका व्रत पूरा करनेके लिए मिट्टीके पुतले लिए जा रही हूँ या जैसी आवश्यकता होगी करूँगी।''

एक बार वह स्मशानमें पहुँच गई। वहाँ जाकर उसने देखा, कि तपस्वी सुदर्शन ध्यानमें निमग्न थे। स्मशानकी भूमि भयंकर थी। चिताओंके जलनेसे उसकी भयङ्करता और बढ़ रही थी। उसी भयङ्कर स्थानमें तपस्वी सुदर्शन कायोत्सर्गमें लीन थे। बस, दासीको अच्छा सुयोग मिला। वह फूली नहीं समायी। उसी समय उसने तपस्वी सुदर्शनको उठवाकर रानीके महलमें पहुंचा दिया।

जिस समय रानीने सेठ सुदर्शनको अपने कमरेमें पाया, वह अत्यन्त प्रसन्न हुई। उसने अपने मनमें विचार किया, कि मेरी मनोकामना पूर्ण हुई, वह कामवासनासे मतवाली बन रही थी। उसने सेठ सुदर्शनसे कहा—''प्यारे! मेरी मनोकामना पूर्ण करो। अपने प्रेमालिंगन द्वारा मुझे सुखी करो, देखो, तुम्हारे लिए मुझे कितनी परेशानी उठानी पड़ी, अब आनन्दसे सुख-क्रीड़ाकर जीवन सार्थक करो,'' मगर तपस्वी सुदर्शन टससे मस नहीं हुए। संसारमें ऐसे जितेन्द्रिय तपस्वी, आदर्श-सदाचारी ब्रह्मचारी कहाँ मिलेंगे? रानीकी अनेक कुचेष्टाओं पर भी ब्रह्मचारी सुदर्शनका मन विचलीत नहीं हुआ। वे जिन भगवानका स्मरण कर इस कष्टसे रक्षा पानेके लिए प्रार्थना करने लगे। उन्होंने अपने मनमें निश्चय कर लिया, कि यदि आज मेरे सदाचारकी रक्षा हो गयी तो, मैं इस संसारको छोड़कर वैराग्य धारण कर लूँगा, फिर इस संसारके झंझटमें नहीं पड़ूँगा। इस प्रकार निश्चय कर, वे ध्यानमें लीन हो रहे। भला ऐसे समयमें कौन ऐसा होगा, जो सुन्दरियोंके अनेकों अनुनय-विनयको यों ठुकरा दे!! संसारमें भाव-मुक्त होकर ब्रह्मचर्यकी रक्षा करनेके लिए सुन्दरीके बाहुपाशोंसे बचकर अपने सदाचारकी रक्षा करना, वह तपस्वी सुदर्शनका ही काम है।

रानी अपनी लाख कोशिश करके थक गई, मगर सुदर्शनका व्रत भंग न हुआ। उसकी बुरी वासना पूरी न हो पानेसे, वह लज्जित होकर तपस्वी सुदर्शनको फँसानेका यत्न करने लगी, उसने अपना शरीर नोचकर घाव कर लिये। वह उसी समय हल्ला करने लगी,—''अरे दौड़ो, बचाओ, पापीके हाथोंसे।'' बस, दूसरा षडयन्त्र सफल हुआ, तपस्वी

सुदर्शन महलमें ही पकड़ लिये गये और महाराजके सामने पकड़कर पहुँचा दिये गये। देखो ! स्त्रियोंका चरित्र ! थोड़ी देर पहले बात क्या थी और अब क्या हो गयी ? दुराचारिणी रानीने अपने बुरी वासना पूरी होते न देख, हल्ला मचाकर, निर्दोष ब्रह्मचारी तपस्वी सुदर्शनको बन्दी बनवा दिया। महाराजने सुदर्शनकी कथा सुनकर क्रोधसे आग-बबूला हो उन्हें फाँसीकी सजा दे दी।

इधर महाराजका हुक्म हुआ—''दुष्ट पापीको मार डालो।'' उधर जल्लादोंने तपस्वीको स्मशान-भूमिमें मार डालनेके लिए ले जाकर खड़ा कर दिया। जहाँ जल्लादकी तलवार चली, वहाँ सुदर्शनकी झुकी हुई गर्दन ज्योंकी त्यों स्थिर रही, तलवारका वार व्यर्थ

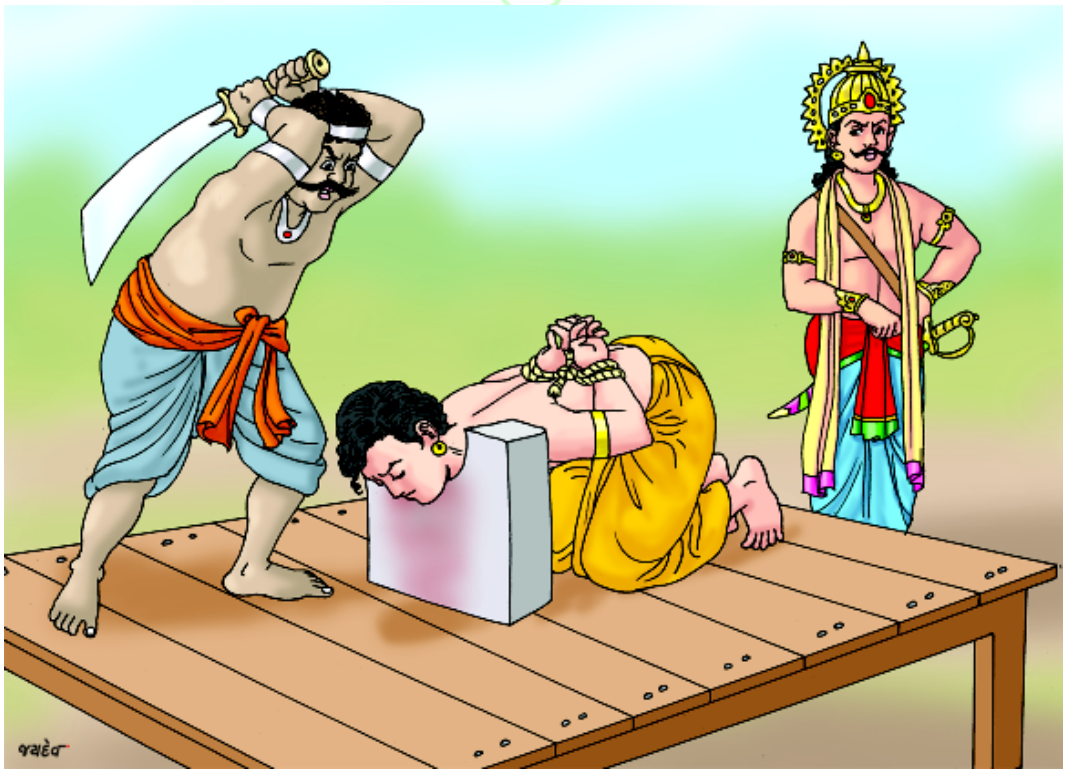

राजाके समक्ष जल्लाद द्वारा सेठ पर तलवारका वार करते हुए

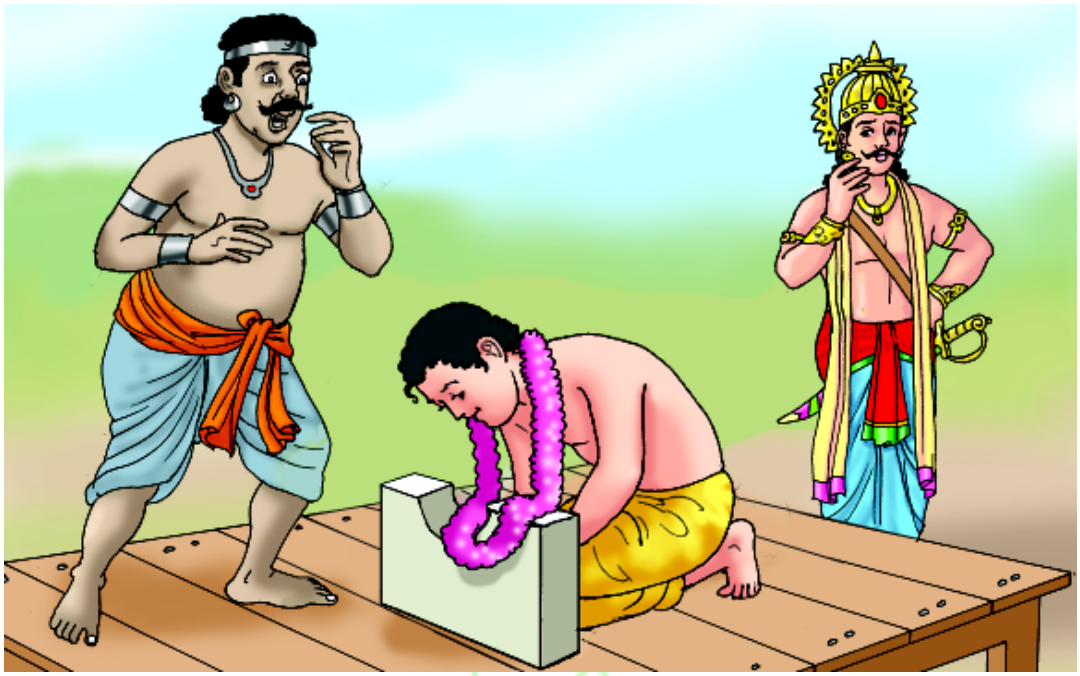

सुदर्शन सेठके पुण्यप्रभावसे तलवारका फूलकी माला बन जाना

गया, सुदर्शनके गर्दन पर वह फूलके समान लगी। सभी आश्चर्य सागरमें गोता खाने लगे। उसी समय देवोंने तपस्वी सुदर्शनकी जय मनाते हुए स्तुति की—'तपस्वी तुम धन्य हो। आज संसारमें तुम्हारे समान कोई श्रेष्ठ जिनभक्त नहीं है। ब्रह्मचारी तुम्हारा शील अनुपमेय है। तुम्हारा हृदय सुमेरुके समान अचल है। तुमने अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत द्वारा अलौकिक काम किया है, जिसकी उपमा त्रिभुवनके इतिहासमें मिलेगी नहीं। देवोंने पुष्पवर्षा की तथा श्रद्धा-भक्तिसे उनकी पूजा की।'

महाराजको जब यह ज्ञात हुआ। तब महाराजाने सेठको निर्दोष, शीलव्रती जान उनकी स्तुति व पूजा की। रानी व दासीको योग्य सजा दी। परन्तु इस घटनासे सुदर्शनके अन्तस्थलमें अत्यन्त ही वैराग्यका भाव उत्पन्न हो गया। वे उसी समय अपने पुत्र सुकान्तवाहन पर, घरका भार सौंपकर, संसारपूज्य विमलवाहन महामुनिके पास जाकर दीक्षित हो गये। मुनिराज सुदर्शनने अपने कठिन तप द्वारा अपने घातिया कर्मोंका नाश कर केवलज्ञान प्राप्त किया। अन्तमें उन्होंने सबको कल्याणका मार्ग दिखलाते हुए पटना-बिहारसे अनन्त सुखधाम मोक्ष वासकर परमानन्द प्राप्त किया।

शीलव्रती सुदर्शन सेठको व उनके अद्‌भुत मुनिन्द्रताको कोटि कोटि वंदन।

गजसुकुमार मुनि

देखो गज-मुनिके शिर उपर, विप्र अगिनि बहु बारी;
शीश जलै जिम लकडी तिनको, तौ हू नाहिं चिंगारी.
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी;
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु-महोत्सव भारी.

कृष्णकी माता देवकीको गजसुकुमार नामका एक आठवाँ पुत्र हुआ जो वसुदेवके समान कान्तिका धारक था, श्रीकृष्णको अत्यन्त प्रिय था एवं अत्यन्त शुभ था। जब गजसुकुमार कन्याओंके मनको हरण करनेवाले यौवनको प्राप्त हुए। तब कृष्णने उत्तमोत्तम राजकुमारियोंके साथ उसका विवाह कराया। सोमशर्मा ब्राह्मणकी एक सोमा नामकी अत्यन्त सुंदर कन्या थी। जो उसकी क्षत्रिया स्त्रीसे उत्पन्न हुई थी। श्रीकृष्णने गजसुकुमारके लिए उसका भी वरण किया।

जब उसके विवाहके प्रारम्भका समय आया, तब समस्त यादव अत्यन्त प्रसन्न हुए।

भगवान नेमिनाथके समवसरणमें नारायण कृष्ण आदि

उसी समय विहार करते हुए भगवन् नेमिनाथ द्वारिकापुरी आये। जब भगवन् आकर द्वारिकापुरीमें बिराजमान हो गये, तब समस्त यादव अनेक मंगल द्रव्य लेकर, उनकी वन्दना करनेके लिए नगरसे बाहर निकले। द्वारिकामें होनेवाले

सोमशर्मा द्वारा गजसुकुमार मुनि पर उपसर्ग

इस हलचलको देखकर गजसुकुमारने किसी कंचुकी(अन्तःपुर रक्षक)से पूछा और जिनेन्द्र भगवान्‌की समस्त हितकारी चेष्टाओंको जान लिया।

तदनन्तर गजसुकुमार भी हर्षसे रोमांच धारण करते हुए सूर्यके समान वर्णवाले रथपर सवार हो जिनेन्द्र भगवानकी वन्दना करनेके लिए गये। वहाँ आर्हन्त्य लक्ष्मीसे युक्त तथा बारह सभाओंसे घीरे हुए जिनेन्द्र भगवानको नमस्कार कर, गजसुकुमार श्रीकृष्णके साथ

मनुष्योंकी सभामें बैठ गये। भगवान् नेमि जिनेन्द्रने, मनुष्य, सुर तथा असुरोंकी उस सभामें धर्मका निरूपण किया, जो संसार-सागरसे पार होनेका एकमात्र उपाय था एवं जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूपी रत्नत्रयसे उज्वल था। अवसर आनेपर अत्यन्त आदरसे पूर्ण इच्छाके धारक श्रीकृष्णने जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार कर श्रोताओंके हितकी इच्छासे तीर्थंकरों, चक्रवर्तीयों, अर्धचक्रवर्तीयों, बलभद्रों और प्रतिनारायणोंकी उत्पत्ति तथा तीर्थंकरोंके अन्तरालके सम्बन्धमें पूछा।

भगवानकी दिव्यध्वनिमें श्रीकृष्णकी इच्छानुसार त्रेसठ शलाका पुरुषोंमें तीर्थंकर, नारायण, प्रतिनारायण, चक्रवर्ती, कल्की आदिका बहुत ही विस्तृत वर्णन आया। (यदि किसीको देखना हो तो हरिवंशपुराण सर्ग-६० गाथा १३७ से ५७२ तक देख लेवे। विस्तारके भयसे यहाँ नहीं दिया जा रहा है।)

भगवानकी दिव्यध्वनिसे तीर्थंकर आदिका चरित्र सुनकर गजसुकुमार संसारसे भयभीत हो गये और पिता, पुत्र आदि समस्त बन्धुजनोंको छोड़कर बड़ी विनयसे और उनसे अनुमति ले जिनेन्द्र भगवान्के समीप पहुँचे। दीक्षा ग्रहण कर तप करनेके लिए उद्यत हो गये। गजसुकुमारके लिए जो प्रभावती आदि कन्याएँ निश्चित की गयी थीं उन सभीने संसारसे विरक्त हो दीक्षा धारण कर ली।

तदन्तर किसी दिन गजसुकुमार मुनि रात्रिके समय एकान्तमें प्रतिमायोगसे विराजमान हो, सब प्रकारकी बाधाएँ सहन कर रहे थे, कि सोमशर्मा अपनी पुत्रीके त्यागसे उत्पन्न क्रोधरूपी अग्निके कणोंसे प्रदीप्त हो उनके पास आया और स्थिर चित्तके धारक उन मुनिराजके सिर पर तीव्र अग्नि प्रज्वलित करने लगा। उस अग्निसे उनका शरीर जलने लगा। उसी अवस्थामें वे शुक्लध्यानके द्वारा कर्मोंका क्षय कर अन्तकृतकेवली हो मोक्ष चले गये।

यक्ष, किन्नर, गन्धर्व और महोरग आदि सुर और असुरोंने आकर, उनके शरीरकी पूजा की। गजसुकुमार मुनिका निर्वाणके समाचार सुनकर वैराग्य प्राप्त हुए बहुत-से यादव तथा वसुदेवको छोड़कर शेष समुद्रविजय आदि अनेक मोक्षकी इच्छासे दीक्षित हो गये। शिवा आदि देवियों, देवकी और रोहिणीको छोड़कर वसुदेवकी अन्य स्त्रियों तथा कृष्णकी पुत्रियोंने भी दीक्षा धारण कर ली।

ऐसे भयंकर उपसर्गविजयी गजसुकुमार मुनिन्द्र हमारा कल्याण करें यही भावना।

सुकोशल मुनिराज

धन्य-धन्य जु सुकौशल स्वामी, व्याघ्रीने तन खायो;
तौ भी श्रीमुनि नेक डिगे नहिं, आतम सों हित लायो.
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी;
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु-महोत्सव भारी.

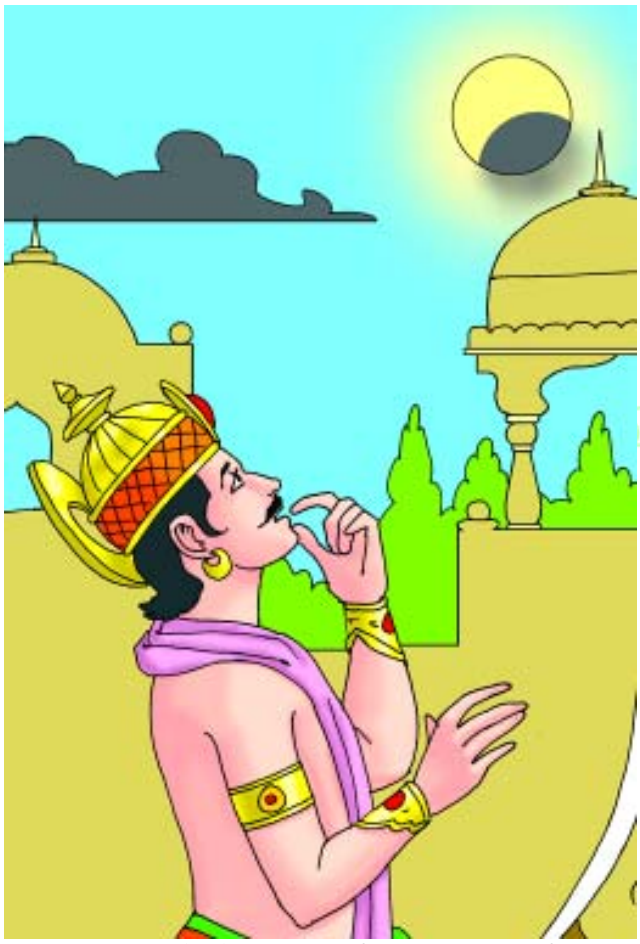

सूर्यग्रहणको देख राजा कीर्तिधरका संसारकी अनित्यताके विषयमें सोचना

एक बार शत्रुओंको भयभीत करनेवाला प्रजा-वत्सल राजा कीर्तिधर, अपने सुन्दर भवनके ऊपर नलकूबेर विद्याधरके समान सुखसे बैठा हुआ सुशोभित हो रहा था। उसकी दृष्टि राहु विमानकी नील कान्तिसे आच्छादित सूर्यमण्डल (सूर्यग्रहण) पर पड़ी। उसे देखकर वे विचार करने लगे, कि अहो! उदयमें आया कर्म दूर नहीं किया जा सकता। सूर्य भीषण अन्धकारको नष्ट कर चन्द्रमण्डलको कान्तिहीन कर देता है तथा कमलोंके वनको विकसित करता है; वह सूर्य राहुको दूर करनेमें समर्थ नहीं है। जिस प्रकार यह सूर्य नष्ट हो रहा है; उसी प्रकार यह यौवनरूपी सूर्य भी जरारूपी ग्रहणको प्राप्त

कर नष्ट हो जाएगा। मजबूत पाशसे बँधा हुआ यह बेचारा प्राणी अवश्य ही मृत्युके मुखमें जाता है।

इस प्रकार समस्त संसारको अनित्य मानकर राजा कीर्तिधरने सभामें बैठे हुए मन्त्रियोंसे कहा कि 'अहो मन्त्रीजनो! इस सागरान्त पृथवीकी आप लोग रक्षा करो। मैं तो मुक्तिके मार्गमें प्रयाण करता हूँ। राजाके ऐसा कहने पर विद्वानों तथा बन्धुजनोंसे परिपूर्ण सभा विषादको प्राप्त हो, उनसे इस प्रकार बोली, कि 'हे राजन्! इस समस्त पृथ्वीके तुम्हीं एक अद्वितीय पति हो। यह पृथ्वी आपके आधीन है तथा आपने समस्त शत्रुओंको जीता है, इसलिए आपके छोड़ने पर यह पृथ्वी सुशोभित नहीं होगी। हे उन्नत पराक्रमके धारक! अभी आपकी छोटी उम्र है। इसलिए इन्द्रके समान राज्य करो।'

इसके उत्तरमें राजाने कहा, कि 'जो शरीररूपी संकुल जन्मरूपी वृक्षोंसे व्याप्त है, बुढ़ापा, वियोग तथा अरतिरूप अग्निसे प्रज्वलित है, तथा अत्यंत दीर्घ है इसे देखकर मुझे भारी भय उत्पन्न हो रहा है'। जब मन्त्रिजनोंको राजाके दृढ़ निश्चयका बोध हो गया, तब उन्होंने बहुत से बुझे हुए अंगारोंको समूल बुझाकर उसमें किरणोंसे सुशोभित उत्तम वैडूर्यमणि रखा। उसके प्रभावसे वे बुझे हुए अंगारोंका समूह प्रकाशमान हो गया। तदनन्तर वे रत्न उठाकर बोले, कि हे राजन्! जिस प्रकार उत्तम रत्नसे रहित अंगारोंका समूह शोभित नहीं होता है। उसी प्रकार आपके बिना यह संसार शोभित नहीं होगा। हे नाथ! आपके बिना यह बेचारी समस्त प्रजा, अनाथ तथा विकल होकर नष्ट हो जाएगी। प्रजाके नष्ट होने पर धर्म नष्ट हो जाएगा और धर्मके नष्ट होने पर क्या नहीं नष्ट होगा? सो आपही कहो। इसलिए जिस प्रकार आपके पिताने प्रजाकी रक्षाके लिए आपको राज्य देकर मोक्ष प्रदान करनेमें दक्ष ऐसा तपश्चरण किया था। उसी प्रकार आप भी अपने इस कुलधर्मकी रक्षा कीजिए'।

अथानन्तर कुशल मन्त्रियोंके इस प्रकार कहने पर राजा कीर्तिधरने नियम किया, कि जिस समय मैं पुत्रको उत्पन्न हुआ सुनूँगा उसी समय मुनियोंका उत्कृष्ट पद अवश्य धारण कर लूँगा। तदनन्तर जिसके भोग और पराक्रम इन्द्रके समान थे तथा जिसकी आत्मा सदा सावधान रहती थी, ऐसे राजा कीर्तिधरने सब प्रकारके भयोंसे रहित तथा व्यवस्थासे युक्त पृथ्वीका दीर्घकाल तक पालन किया। तदनन्तर राजा कीर्तिधरके साथ चिरकाल तक सुखका उपभोग करती हुई, रानी सहदेवीने सर्वगुणोंसे परिपूर्ण एवं पृथ्वीको धारण करनेमें समर्थ पुत्रको उत्पन्न किया।

पुत्र जन्मका समाचार राजाके कानों तक न पहुँच जाए, इस भयसे पुत्र जन्मका उत्सव नहीं किया गया तथा इसी कारण कितने ही दिन तक प्रसवका समय गुप्त रखा गया। तदनन्तर उगते हुए सूर्यके समान वह बालक चिरकाल तक छिपकर कैसे रखा जा सकता था? फलस्वरूप किसी दरिद्र मनुष्यने पुरस्कार पानेके लोभसे राजाको खबर दे दी। राजाने हर्षित होकर उसे मुकुट आदि दे दिया तथा विपुल धनसे युक्त सौ गाँवके साथ घोष नामका मनोहर शाखानगर दिया और माताकी महा तेजपूर्ण गोदमें स्थित उस एक पक्षके बालकको बुलवाकर उसे बड़े वैभवके साथ अपने पद पर बैठाया तथा सब लोगोंने सन्मान किया। चूँकी उसके उत्पन्न होने पर वह 'कोसला नगरी' वैभवसे अत्यन्त मनोहर

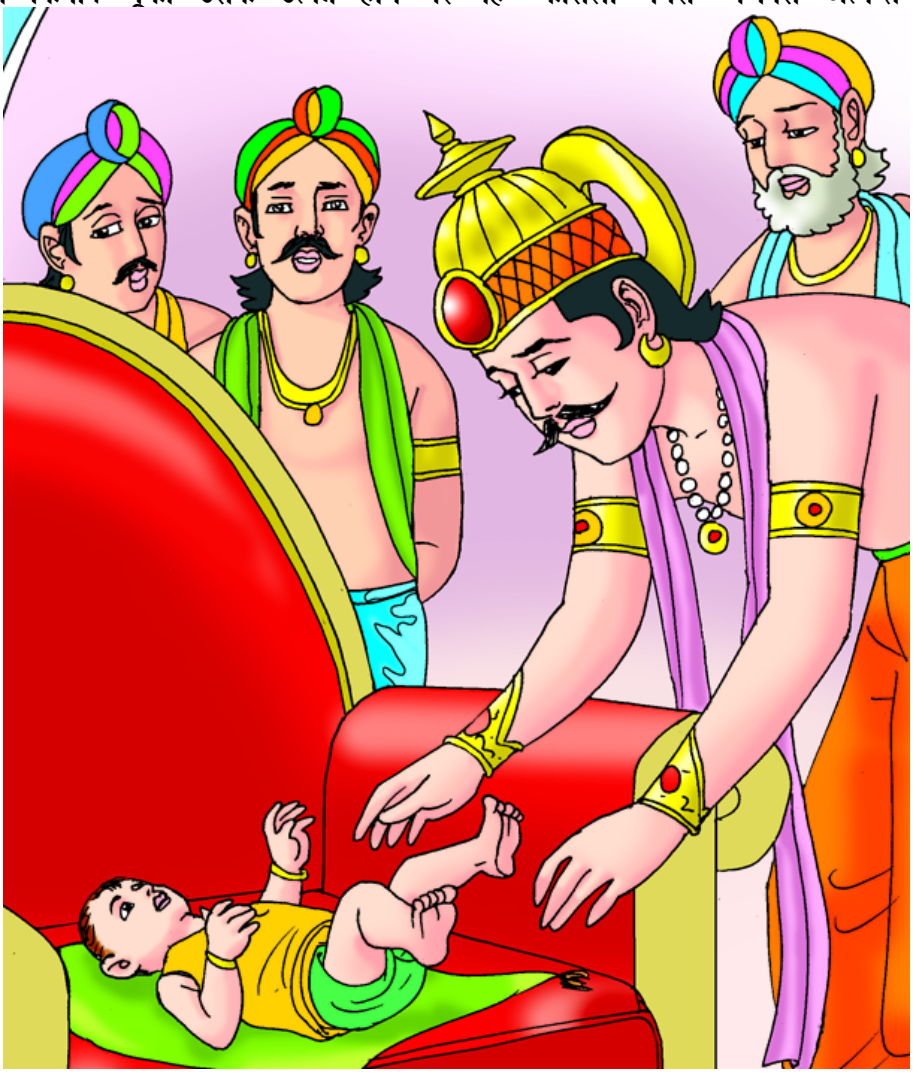

राजा कीर्तिधर 15 दिनके बालकका राज्याभिषेक करते हुए

हो गई थी; इसलिए उत्तम चेष्टाओंको धारण करनेवाला वह बालक 'सुकोशल' इस नामको प्राप्त हुआ।

तदनन्तर राजा कीर्तिधर भवनरूपी कारागारसे निकलकर तपोवनमें पहुँचे और तप सम्बन्धी तेजसे वर्षाकालसे रहित सूर्यके समान अत्यन्त सुशोभित होने लगे।

अथानन्तर जो घोर तपस्वी थे, पृथ्वीके समान क्षमाके धारक थे, प्रभु थे, जिनका शरीर मैलरूपी कचुंक(वस्त्र)से व्याप्त था, जिन्होंने मानको नष्ट कर दिया था, जो उदार हृदयी थे, जिनका समस्त शरीर तपसे सूख गया था, जो अत्यन्त धीर थे, केश लोंच करनेको जो आभूषणके समान समझते थे, जिनकी लम्बी भुजाएँ नीचेकी ओर लटक रहीं थीं, जो युगप्रमाण अर्थात् चार हाथ प्रमाण मार्गमें दृष्टि डालते हुए चलते थे, जो स्वभावसे ही मत्त हाथीके समान मन्दगतिसे चलते थे, विकारशून्य थे, समाधान अर्थात् चित्तकी एकाग्रतासे सहित थे, विनीत थे, लोभरहित थे, आगमानुकूल आचारका पालन करते थे, जिसका मन दयासे निर्मल था, जो स्नेहरूपी पङ्कसे रहित थे; मुनिपदरूपी लक्ष्मीसे सहित थे और जिन्होंने चिरकाल उपवास धारण कर रखा था, ऐसे कीर्तिधर मुनिराज भ्रमण करते हुए गृहपङ्क्तिके क्रमसे प्राप्त अपने पूर्व घरमें भिक्षाके लिए प्रवेश करने लगे।

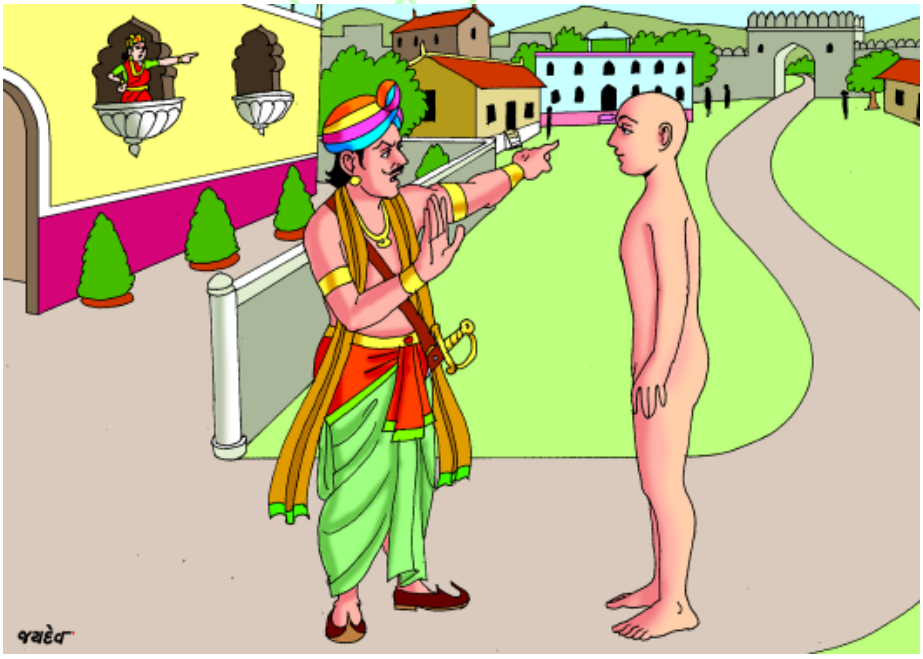

रानी सहदेवी के आदेश अनुसार शुद्ध रत्नत्रयधारी कीर्तिधर मुनिराजको राजमहलमें आनेसे रोकता हुआ द्वारपाल

उस समय उनकी गृहस्थावस्थाकी स्त्री सहदेवी झरोखेमें दृष्टि लगाए खड़ी थी। उन्हें देख परमक्रोधको प्राप्त हुई। क्रोधसे उसका मुँह लाल हो गया। ओंठ चबाती हुई उस दुष्टाने द्वारपालोंसे कहा, कि यह मुनि घरको फोड़नेवाला है। इसलिए यहाँसे शीघ्र ही निकाल दिया जाए। मुग्ध, सर्वजनप्रिय और स्वभावसे कोमल चित्तका धारक सुकुमाल कुमार जब तक इसे नहीं देखता है, तब तक शीघ्र ही दूर कर दो। यही नहीं, मैं यदि नग्न मनुष्यों तकको महलके अन्दर देखूँगी, तो हे द्वारपालो! याद रक्खो मैं अवश्य ही तुम्हें दण्डित करूँगी। यह निर्दय जबसे शिशुपुत्रको छोड़कर गया है, तभीसे इन लोगोंमें मेरा विश्वास नहीं रहा। ये लोग महाशूरवीरोंसे सेवित राज्यलक्ष्मीसे द्वेष करते हैं तथा महान् उद्योग करनेमें तत्पर रहनेवाले मनुष्योंको अत्यन्त निर्वेद प्राप्त करा देते हैं। सहदेवीके इस प्रकार कहने पर, जिनके मुखसे दुर्वचन निकल रहे थे तथा जो हाथमें वेत्र(बेंत) धारण कर रहे थे, ऐसे दुष्ट द्वारपालोंने उन मुनिराजको दूरसे ही शीघ्र निकाल दिया। इन्हें ही नहीं, 'राजभवनमें विद्यमान राजकुमार धर्मका शब्द सुन न ले' इस भयसे नगरमें जो और भी मुनि विद्यमान थे, उन सबको नगरसे बाहर निकाल दिया।

इस प्रकार वचनरूपी शूलोंके द्वारा छीले हुए मुनिराजको देखकर, जिसका भारी शोक फिरसे नवीन हो गया था, तथा जो भक्तिसे युक्त थी; ऐसी सुकोशलकी धाय चिरकाल बाद अपने स्वामी कीर्तिधरको पहचानकर गला फाड़-फाड़कर रोने लगी। उसे रोती सुनकर सुकोशल शीघ्र ही उसके पास आया और सान्त्वना देता हुआ बोला, कि हे माता! कह! तेरा अपकार किसने किया है? माताने तो इस शरीरको गर्भमात्रमें ही धारण किया है, पर आज यह शरीर तेरे दुग्धपानसे ही इस अवस्थाको प्राप्त हुआ है। तू मेरे लिए मातासे भी अधिक गौरवको धारण करती है। बता, यमराजके मुखमें प्रवेश करनेकी इच्छा करनेवाले किस मनुष्यने तेरा अपमान किया है? यदि आज माताने भी तेरा पराभव किया होगा तो मैं उसका अविनय करनेको तैयार हूँ, फिर दूसरे प्राणीकी तो बात ही क्या है?

तदनन्तर वसन्तलता नामक धायने बड़े दुःखसे आँसुओंकी धाराको कम कर सुकोशलसे कहा, कि 'तुम्हारे पिता जो शिशु अवस्थामें ही तुम्हारा राज्याभिषेक कर संसाररूपी दुःखदायी पञ्जर(पिंजर)से भयभीत हो तपोवनमें चले गये थे। आज जब भिक्षाके लिए आपके घरमें प्रविष्ट किया; तब तुम्हारी माताने अपने अधिकारसे उन्हें द्वारपालोंके द्वारा अपमानित कर, बाहर निकलवा दिया। उन्हें अपमानित होते देख, मुझे बहुत शोक हुआ और उस शोकको मैं रोक नहीं सकी। इसलिए हे वत्स! मैं रो रही हूँ।' पहले स्वामी कीर्तिधरने हमारा जो उपकार किया था, वह स्मरणमें आते ही हृदय जलने लगता है। पापके उदयसे

दुःखका पात्र बननेके लिए ही मेरा यह शरीर रुका हुआ है। जान पड़ता है, कि यह लोहेसे बना है। इसलिए तो स्वामीका वियोग होने पर भी स्थिर है। निर्ग्रन्थ मुनिको देखकर तुम्हारी बुद्धि वैराग्यमय न हो जाये; इस भयसे नगरमें मुनियोंका प्रवेश रोक दिया गया है। परन्तु तुम्हारे कुलमें परम्परासे यह धर्म चला आया है, कि पुत्रको राज्य देकर तपोवनमें आत्माकी सेवा करना। तुम कभी घरसे बाहर नहीं निकल सकते हो। इतना भी क्या मन्त्रियोंके इस निश्चयको नहीं जान पाये हो!! इसी कारण नीतिके जाननेवाले मन्त्रियोंने तुम्हारे भ्रमण आदिकी व्यवस्था इसी भवनमें कर रखी है।

तदनन्तर वसन्तलता धाय द्वारा निरूपित समस्त वृत्तान्त सुनकर सुकोशल शीघ्रतासे महलके अग्रभागमेंसे नीचे उतरा और छत्र, चमर आदि राज-चिह्नोंको छोड़कर कमलके समान कोमल कान्तिको धारण करनेवाले पैरोंसे पैदल ही चल पड़ा। इस तरह परम उत्कण्ठासे युक्त सुकोशल राजकुमार पिताके समीप पहुँचा। उसके जो छत्र धारण करनेवाले आदि सेवक थे, वे सब व्याकुल चित्त होते हुए हड़बड़ाकर उसके पीछे दौड़ते आये। कुमारने जाते ही प्रासुक विशाल तथा उत्तम शिलातल पर विराजमान अपने पिता कीर्तिधर मुनिराजकी तीन प्रदक्षिणाएँ दी।

उस समय उसके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त थे, और उसकी भावनाएँ अत्यन्त उत्तम थीं। उसने दोनों हाथ जोड़कर घुटनों और मस्तकसे पृथवीका स्पर्श कर, बड़े स्नेहके साथ उनके चरणोंमें नमस्कार किया। वह हाथ जोड़कर मुनिराजके आगे बैठ गया। अपने घरसे मुनिराजका तिरस्कार होनेके कारण मानो लज्जाको प्राप्त हो रहा था।

उसने मुनिराजसे कहा, कि 'जिस प्रकार अग्निकी ज्वालाओंसे व्याप्त घरमें सोते हुए मनुष्योंको, तीव्र गर्जनासे युक्त मेघोंका समूह जगा देता है, उसी प्रकार जन्म-मरणरूपी अग्निसे प्रज्वलित इस संसाररूपी घरमें, मैं मोहरूपी निद्रासे आलिङ्गित होकर सो रहा था। हे प्रभो! आपने मुझे जगाया है। आप प्रसन्न होइए तथा आपने स्वयं जिस दीक्षाको धारण किया है, वह मेरे लिए भी दीजिए। 'हे भगवन्! मुझे भी इस संसारके व्यसनरूपी संकटसे बाहर निकालिए'। नीचेकी ओर मुख किये सुकोशल जब तक मुनिराजसे यह कह रहा था, तब तक उसके समस्त सामन्त वहाँ आ पहुँचे। सुकोशलकी स्त्री विचित्रमाला भी गर्भके भारको धारण करती विषादभरी, अन्तःपुरके साथ वहाँ आ पहुँची। सुकोशलको दीक्षाके सन्मुख जानकर अन्तःपुरसे एक साथ भ्रमरकी झांकरके समान कोमल रोनेकी अवाज उठ पड़ी।

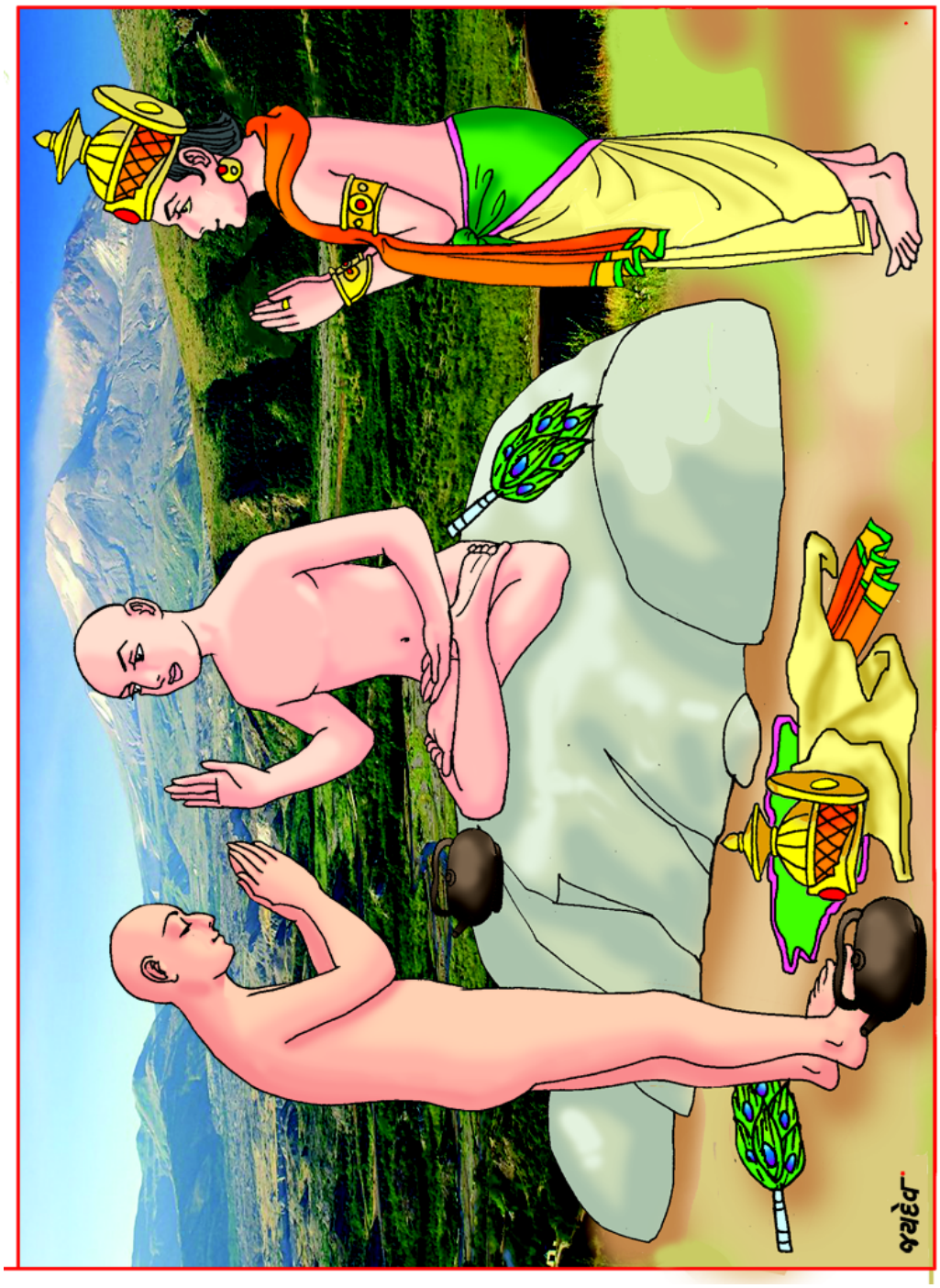

राजा सुकोशलको शुद्धोपयोगलक्षण मुनिपदरूप आशीर्वचन देते हुए मुनिराज कीर्तिधर

तदनन्तर सुकोशलने कहा, कि 'यदि विचित्रमालाके गर्भमें पुत्र है, तो उसके लिए मैंने राज्य दिया'। इस प्रकार कहकर उसने निःस्पृह हो, आशारूपी पाशको छेदकर, स्नेहरूपी पिंजरको जलाकर, स्त्रीरूपी बेड़ीको तोड़कर, राज्यको तृणके समान छोड़कर, अलंकारोंका त्याग कर, अन्तरङ्ग बहिरङ्ग दोनों प्रकारके परिग्रहको छोड़कर, पर्यङ्कासनसे बैठकर, केशोंका लोंचकर पितासे शुद्धोपयोग लक्षण मुनिव्रत धारण किए। दृढ निश्चय हो शान्तचित्तसे पिताके साथ विहार करने लगा। जब वह विहारके योग्य पृथ्वी पर भ्रमण करता था, तब पैरोंकी लाल-लाल किरणोंसे ऐसा जान पड़ता था, मानों कमलोंको उपहार ही पृथ्वी पर चढ़ा रहा हो। लोग उसे आश्चर्यभरे नेत्रोंसे देखते थे।

मिथ्यादृष्टि तथा पाप करनेमें तत्पर रहनेवाली सहदेवी आर्तध्यानसे मरकर तिर्यंच योनिमें उत्पन्न हुई। इस प्रकार पिता-पुत्र आगमानुकूल विहार करते थे। विहार करते-करते जहाँ सूर्य अस्त हो जाता था। वे वहीं रह जाते थे। तदनन्तर दिशाओंको मलिन करता हुआ वर्षाकाल आ पहुँचा। काले-काले मेघोंके समूहसे आकाश ऐसा जान पड़ने लगा, मानो गोबरसे लीपा गया हो। जिन पर भ्रमर गुञ्जार कर रहे थे, ऐसी कदम्बकी बड़ी-बड़ी बोंडियाँ ऐसी जान पड़ती थी, मानो वर्षाकालरूपी राजाका यशोगान ही कर रही हों। आकाशतलसे अखण्ड जलधारा बरस रही थी। उससे ऐसा जान पड़ता था, मानो आकाशतल पिघल-पिघल कर बह रहा हो और पृथवीमें हरी-हरी घास उग रही थी, उससे ऐसा जान पड़ता था, मानो उसने संतोषसे घासरूपी साडी ही पहन रखी हो। जिस प्रकार अतिशय दुष्ट मनुष्यका चित्त ऊँच-नीच सबको समान कर देता है, उसी प्रकार वेगसे बहनेवाले जलके पूरने ऊँची-नीची समस्त भूमिको समान कर दिया था। बिजलीका तेज जल्दी-जल्दी समस्त दिशाओंमें घूम रहा था। उससे ऐसा जान पड़ता था, मानो आकाशका नेत्र 'कौनसा देश जलसे भरा गया और कौनसा देश नहीं भरा गया' इस बातको देख रहा था। अनेक प्रकारके तेजको धारण करनेवाले इन्द्रधनुषसे आकाश ऐसा सुशोभित हो गया, मानो अत्यन्त ऊँचे सुन्दर तोरणसे ही सुशोभित हो गया हो।

सदा (दया) अनुकम्पाके पालनमें तत्पर रहनेवाले दिगम्बर मुनिराज प्रासुक स्थान पाकर चातुर्मास व्रतका नियम लिए हुए थे। जो शक्तिके अनुसार नाना प्रकारके व्रत-नियम-आखड़ी आदि धारण करते थे तथा सदा साधुओंकी सेवामें तत्पर रहते थे, ऐसे श्रावकोंने दिग्व्रत धारण कर रखा था। इस प्रकार मेघोंसे युक्त वर्षाकालके उपस्थित होने पर आगमानुकूल आचारको धारण करनेवाले दोनों पिता-पुत्र निर्ग्रंथ साधु—कीर्तिधर मुनिराज और सुकोशल मुनिराज—इच्छानुसार विहार करते हुए उस स्मशान (भूमि)में—जो वृक्षोंके

अन्धकारसे गम्भीर था, अनेक सर्प आदि हिंसक जन्तुओंसे व्याप्त था, पहाड़की छोटी-छोटी शाखाओंसे दुर्गम था, भयङ्कर जीवोंको भी भय उत्पन्न करनेवाला था, काक, गीध, रींछ तथा श्रृगाल आदिके शब्दोंसे जिसके गर्त भर रहे थे, जहाँ अर्धजले मुरदे पड़े हुए थे, जो भयङ्कर था, जहाँकी भूमि ऊँची-नीची थी, जहाँ चर्बीकी अत्यन्त सड़ी बाससे तीक्ष्ण वायु बड़े वेगसे बह रही थी, जो अट्टहाससे युक्त घूमते हुए भयङ्कर राक्षस और वेतालोंसे युक्त था तथा जहाँ तृणोंके समूह और लताओंके जालसे बड़े-बड़े वृक्ष परिबद्ध–व्याप्त थे। एक साथ विहार करते हुए ऐसे विशाल स्मशानमें तपरूपी धनके धारक उज्वल मनसे युक्त धीरवीर पितापुत्र—दोनों मुनिराज आषाढ सुदी पूर्णिमाको अनायास ही आ पहुँचे। सब प्रकारकी स्पृहासे रहित दोनों मुनिराज, जहाँ पत्तोंके पड़नेसे पानी प्रासुक हो गया था, ऐसे उस स्मशानमें एक वृक्षके नीचे चार मासका उपवास लेकर बिराजमान हो गये। वे दोनों मुनिराज कभी पर्यङ्कासनसे बिराजमान रहते थे, कभी कायोत्सर्ग धारण करते थे और कभी वीरासन आदि विविध आसनोंसे अवस्थित रहते थे। इस तरह उन्होंने वर्षाकाल व्यतीत किया। कार्तिकमासकी पूर्णिमा व्यतीत होने पर वे तपस्वीजन उस स्थानसे विहार करने उद्यत हुए।

अथानन्तर जिनका चातुर्मासोपवासका नियम पूर्ण हो गया था, ऐसे वे दोनों मुनिराज आगमानुकूल गतिसे गमन करते हुए पारणाके निमित्त नगरमें जानेके लिए उद्यत हुए। उसी समय एक व्याघ्री जो पूर्वभवमें सुकोशल मुनिकी माता सहदेवी थी; उन्हें देखकर क्रोधसे भर गई, उसकी खूनसे लाल-लाल दिखनेवाली बिखरी जटाएँ काँप रही थीं, उसका मुख दाढोंसे भयंकर था, पीले-पीले नेत्र चमक रहे थे, उसकी गोल पूँछ मस्तकसे ऊपर आकर लग रही थी, नखोंके द्वारा वह पृथिवीको खोद रही थी, गम्भीर हुंकार कर रही थी, ऐसी जान पड़ती थी, मानो भारी शरीरको धारण करनेवाली ही हो, उसकी लाल-लाल जिह्वाका अग्रभाग लपलपा रहा था, वह देदीप्यमान शरीरको धारण कर रही थी और मध्याह्नके सूर्यके समान जान पड़ती थी। बहुत देर तक क्रीड़ा करनेके बाद उसने सुकोशलस्वामीको लक्ष्यकर ऊँची छलाङ्ग भरी। सुन्दर शोभाको धारण करनेवाले दोनों मुनिराज, उसे छलाङ्ग भरती देख 'यदि इस उपसर्गसे बचे तो आहार पानी ग्रहण करेंगे, अन्यथा नहीं। इस प्रकारकी सालम्ब प्रतिज्ञा लेकर निर्भय हो कायोत्सर्गसे बैठ गये। वह दयाहीन व्याघ्री सुकोशल मुनिके ऊपर पड़ी और नखोंके द्वारा उनके मस्तक आदि अङ्गोंको खाती हुई पृथ्वीपर आई। उसने उनके समस्त शरीरको चिर डाला। जिससे खूनकी धाराओंको छोड़ते हुए, वे उस पहाड़के समान जान पड़ते थे, जिससे गेरू आदि धातुओंसे मिश्रित पानीके निर्जर झर रहे हों। तदनन्तर वह पापिनी उनके सामने खड़ी होकर तथा नाना प्रकारकी चेष्टाएँ कर उन्हें खाने लगी।

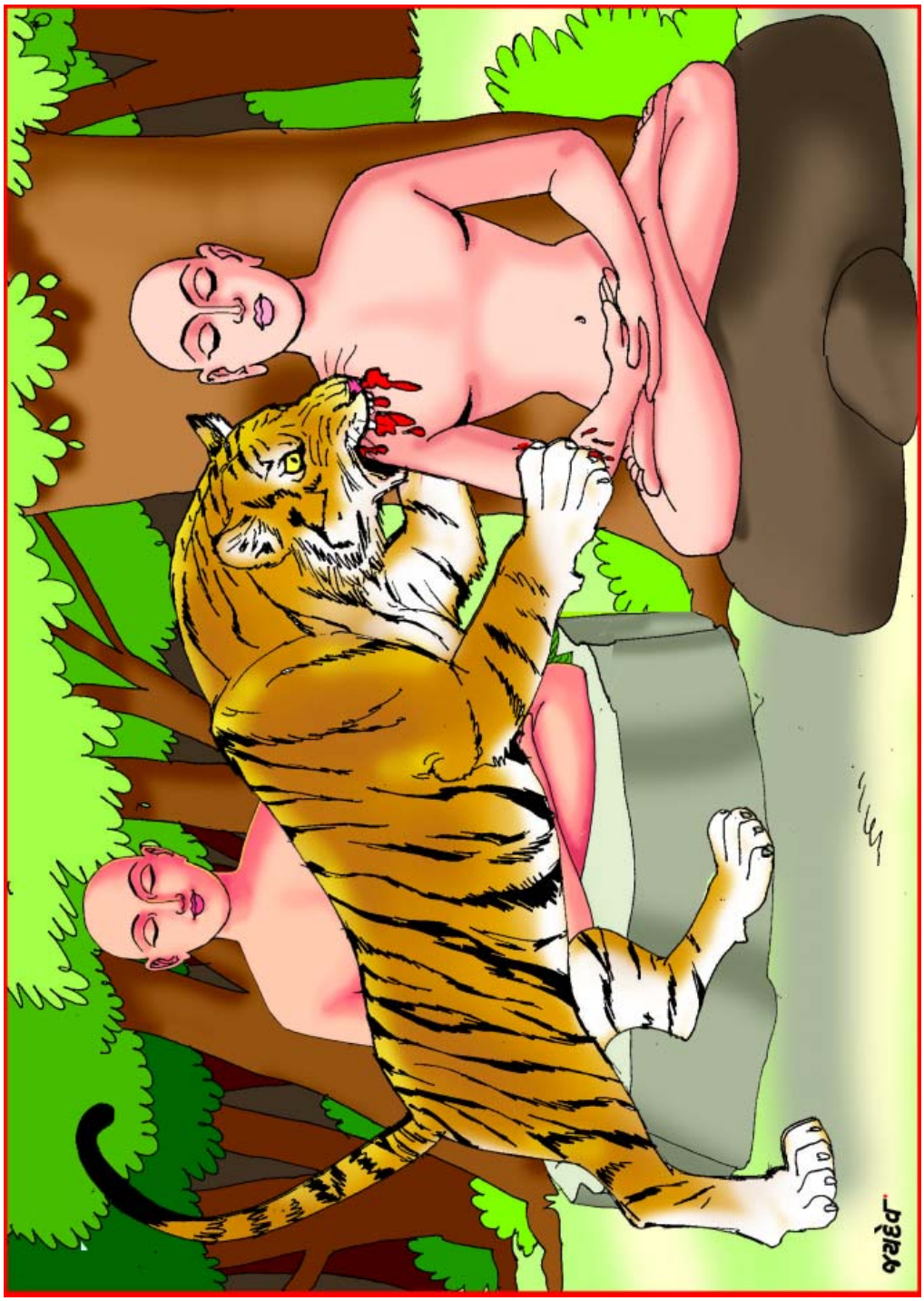

व्याघ्री(पूर्वभवमें सुकोशलकी माता) द्वारा उपसर्गके समय भी आर्तध्यानमें लीन सुकोशल मुनिराज

शुद्धात्मपरिणामी कीर्तिधर मुनिराजका व्याघ्रीको संबोधन सह धर्मोपदेश

गौतमस्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं, कि 'हे श्रेणिक! मोहकी चेष्टा तो देखो जहाँ माता ही प्रिय पुत्रके शरीरको खाती है। इससे बढ़कर और क्या कष्टकी बात होगी, कि दूसरे जन्मसे मोहित हो बान्धवजन ही अनर्थकारी शत्रुताको प्राप्त हो जाते हैं।'

तदनन्तर मेरुके समान स्थिर और शुक्ल ध्यानको धारण करनेवाले सुकोशल मुनिका शरीर छूटनेके पहले ही केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। ५०० धनुष ऊपर स्वस्थ शरीरयुक्त हो गये और अन्तःकृत केवली होकर सिद्धदशाको प्राप्त हुए। सुर और असुरोंने इन्द्रके साथ आकर बड़े हर्षसे दिव्य पुष्पादि सम्पदाके द्वारा उनके शरीरकी पूजा की। सुकोशलके पिता कीर्तिधर मुनिराजने भी उस व्याघ्रीको मधुर शब्दोंसे सम्बोधा, जिससे संन्यास ग्रहण कर वह स्वर्ग गई। तदनन्तर उसी समय कीर्तिधर मुनिराजको भी केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। सुर और असुर केवलज्ञानकी महिमा फैलाकर तथा दोनों केवलियोंके चरणोंको नमस्कार कर यथायोग्य अपने-अपने स्थान पर गये। गौतमस्वामी कहते हैं, कि 'जो पुरुष सुकोशलस्वामीके माहात्म्यको पढ़ता है, वह उपसर्गसे रहित हो चिरकाल तक सुखसे जीवित रहता है।'

उपसर्ग विजयी भगवान सुकोशल मुनिन्द्र भगवंतको कोटि-कोटि वंदन ।

उपसर्ग विजयी यशोधर मुनिराज

आजसे करीब २६०० वर्ष हुए इस भारतवर्षमें राजगृह नगरमें राजा श्रेणिकका राज्य था। वे बौद्धधर्मी थे। उनकी रानी चेलना प्रसिद्ध राजा चेटककी पुत्री व जैनधर्मकी दृढ श्रद्धावान थी। उसने राजनूको व सारी नगरीको बौद्धधर्मी, बौद्धधर्ममें प्रवृत्त देख व कहीं भी जैनधर्मका नामोनिशान न देख बहुत दुःखी हुई। यह बात राजनूको ज्ञात हुई। वह रानीको दुःखी नहीं देख सकता था। इसलिए उसने रानीको उसकी इच्छानुसार जिनधर्मकी आराधना करनेकी संमति दी। रानी चेलनाको जिनधर्मकी भावसह आराधना करती देख सारे

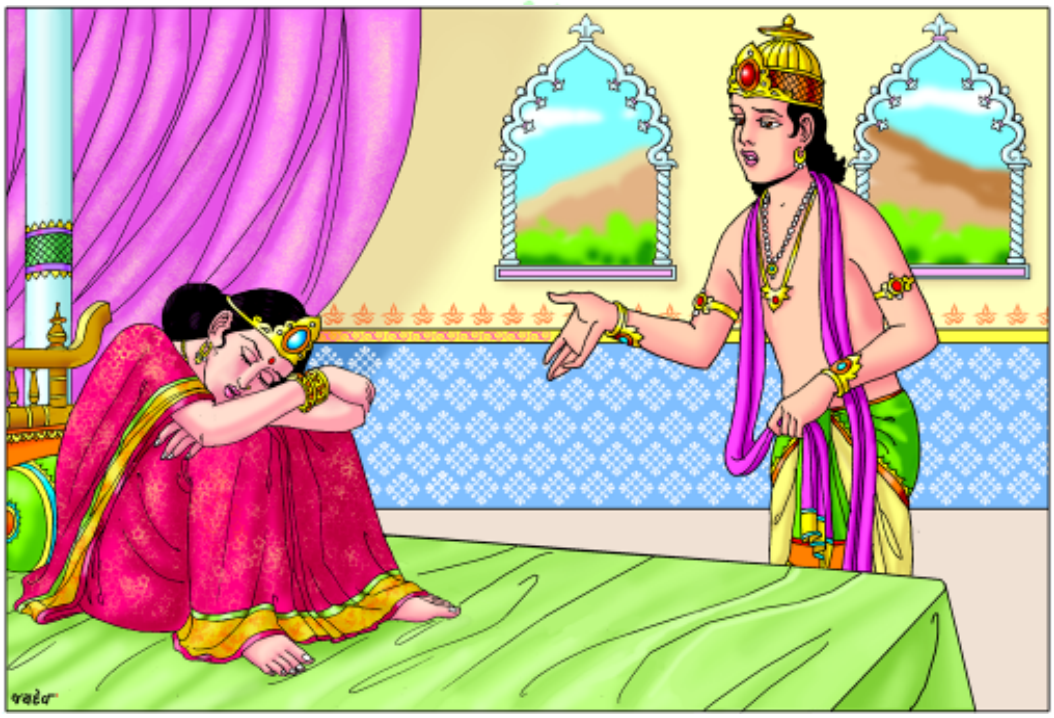

रानी चेलनाका दुःख जानकर जिनधर्मकी आराधना करनेकी सम्मति देते राजा श्रेणिक

महलमें ही जिनमंदिर बनवाकर भगवानकी अर्चना करती रानी चेलना व अन्य

महलमें ही नहीं नगरमें जिनधर्मका प्रभाव बढ़ने लगा। अनेक जिनमन्दिर आदि बनते गये।

(यह कथा विस्तृतरूपसे 'लघु जैन पौराणिक कथा भाग-१की कथा नं. २, पृष्ठ-२४ पर है। पाठक विस्तृत कथा वहाँसे देख लें।)

तदनन्तर बौद्ध साधुओंको यह पता लगा, कि रानी चेलना जैनधर्मकी परम भक्त है, राजमहलको उसने जैनधर्मका परम भक्त बना दिया और नगर एवं देशमें वह जैनधर्मके प्रभावनार्थ भरपूर प्रयत्न कर रही है। वे शीघ्र ही दौड़ते-दौड़ते राजा श्रेणिकके पास आये और क्रोधमें आकर महाराज श्रेणिकसे इस प्रकार कहने लगे—

राजन्! हमने सुना है, कि रानी चेलना जैन धर्मकी परम भक्त है। वह बौद्ध धर्मको एक घृणित धर्म मानती है, बौद्ध धर्मको धरातलमें पहुँचानेके लिए, वह पूरा प्रयत्न कर रही है। यदि यह बात सत्य है, तो आप शीघ्र ही इसके प्रतिकारार्थ कोई उपाय सोचें, नहीं तो बड़े भारी अनर्थकी सम्भावना है।

बौद्ध गुरुओंके ऐसे वचन सुन महाराजने और तो कुछ भी जवाब न दिया, केवल

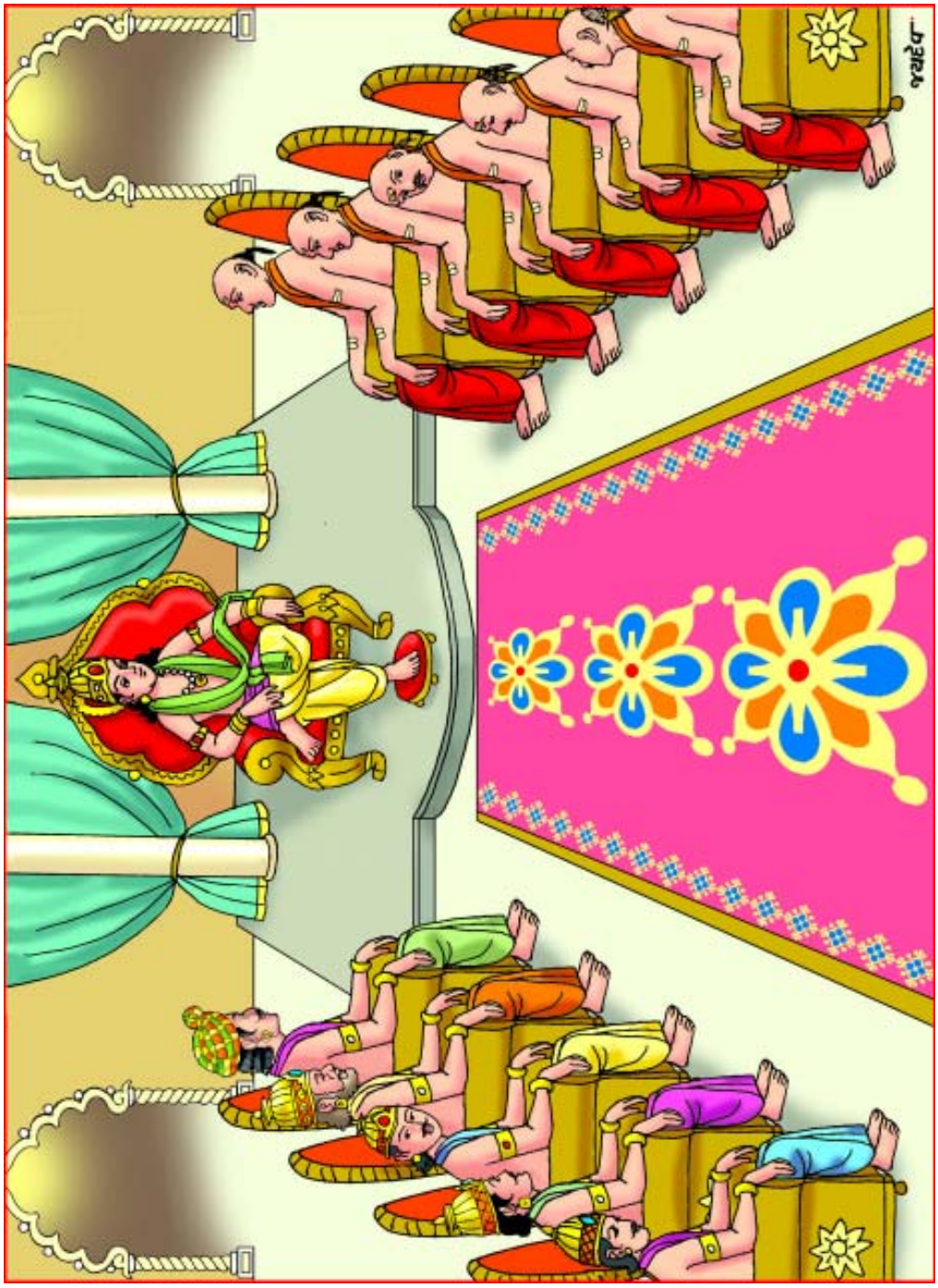

बौद्ध साधुओंकी शिकायत सुनकर 'आप स्वयम् ही रानी चेलनाको समझाने हेतु' कहते राजा श्रेणिक

यही कहा—पूज्यवरो! रानीको मैं बहुत समझा चुका, उसके ध्यानमें एक भी बात नहीं आती। कृपाकर आप ही उसके पास जायें और उसे समझाएँ। यदि आप इस बातमें विलम्ब करेंगे, तो याद रखिये बौद्धधर्मकी बहुत हानि होगी। अवश्य रानी बौद्धधर्मको उड़ानेके लिए पूरा-पूरा प्रयत्न कर रही है।

महाराजके ऐसे वचनोंने बौद्ध गुरुओंके चित्त पर कुछ शांतिका प्रभाव डाल दिया। उन्हें इस बातसे सर्वथा तसल्ली हो गई, कि चलो राजा तो बौद्धधर्मका भक्त है। उन्होंने शीघ्र ही राजासे कहा—

राजन्! आप खेद न करें। हम अभी रानीको जाकर समझाते हैं। हमारे लिए यह बात कहाँ कठिन है? क्योंकि हम पिटकत्रय आदि अनेक ग्रंथोंके भले प्रकार ज्ञाता हैं। हमारी जिह्वा सदा अनेक शास्त्रोंकी रंगस्थल बनी रहती है और भी अनेक विद्याओंके हम पारगामी हैं ऐसा कहकर वे शीघ्र ही रानी चेलनाके पास आये और इस प्रकार उपदेश देने लगे—

चेलने! हमने सुना है, कि आप जैन धर्मको परम पवित्र धर्म समझती हैं और बौद्ध धर्मसे घृणा करती हैं। यह आपका विचार सर्वथा अयोग्य है। आप यह निश्चय समझें, कि संसारमें जीवोंका हित करनेवाला, तो बौद्धधर्म ही है, जैन धर्मसे कदापि जीवोंका कल्याण नहीं हो सकता। देखो! ये जितने दिगम्बर मतके अनुयायी साधु हैं, सो पशुके समान हैं, क्योंकि पशु जिसप्रकार नग्न रहता है, उसी प्रकार ये भी नग्न फिरते रहते हैं। आहारके न मिलनेसे पशु जैसा उपवास करता है, इसी प्रकार ये भी आहारके अभावसे उपवास करते हैं तथा पशुके समान ये अविचारित और ज्ञान-विज्ञान रहित भी हैं।

हे रानी! दिगम्बर साधु जैसे इस भवमें दीन दरिद्री रहते हैं, परजन्ममें भी इनकी यही दशा रहती है, परजन्ममें भी इन्हें किसी प्रकारके वस्त्र भोजनोंकी प्राप्ति नहीं होती। वर्तमानमें जो दिगम्बर मुनि क्षुधा, तृषा आदिसे व्याकुल दिखते हैं, परजन्ममें भी नियमसे ये ऐसे ही व्याकुल रहेंगे। इसमें कोई सन्देह नहीं।

हे रानी! क्षेत्रमें बीज बोनेपर तदनुरूप फल उत्पन्न होता है। उसी प्रकार समस्त संसारी जीवोंकी दशा है। वे जैसा कर्म करते हैं, नियमसे उन्हें भी वैसा ही फल मिलता है। याद रखो, यदि आप इन भिक्षुक दरिद्र दिगम्बर मुनियोंकी सेवा शुश्रूषा करोगे तो तुम भी इन्हींके समान परभवमें दरिद्र एवं भिक्षुक रहोंगी। इसलिए अनेक प्रकारके भोग भोगनेवाले, वस्त्र आदि पदार्थोंसे सुखी, बौद्ध साधुओंकी ही आप भक्तिपूर्वक सेवा करें।

इन्हें ही अपना हितैषी मानो, जिससे परभवमें भी आपको अनेक प्रकारके भोग भोगने मिलेंगे। पतिव्रते! अब आपको चाहिए, कि आप शीघ्र ही अपने चित्तसे जैन मुनियोंकी भक्ति निकाल दो। बुद्धिमान लोग कल्याण मार्गगामी होते हैं। सच्चा कल्याणकारी मार्ग भगवान बुद्धका ही है। बौद्धगुरुओंका ऐसा उपदेश सुन, रानी चेलनासे रहा न गया तथा बड़ी गम्भीरता एवं सभ्यतासे उसने शीघ्र ही पूछा :

बौद्ध गुरुओं! आपका उपदेश मैंने सुना, किन्तु मुझे इस बातका संदेह रह गया, कि आप यह बात कैसे जानते हैं? कि दिगम्बर मुनियोंकी सेवासे परभवमें क्लेश भोगने पड़ते हैं, दीन दरिद्र होना पड़ता है और बौद्ध गुरुओंकी सेवासे मनुष्य परभवमें सुखी रहते हैं इत्यादि कृपाकर मुझे शीघ्र कहें।

रानीके वचन सुन बौद्ध गुरुओंने कहा–चेलने! आपको इस बातमें सन्देह नहीं करना चाहिए। हम सर्वज्ञ हैं। परभवकी बात बताना हमारे सामने कोई बड़ी बात नहीं। हम विश्वभरकी बातें बता सकते हैं। बौद्धगुरुओंके ऐसे वचन सुन, रानी चेलनाने कहा— बौद्ध गुरुओं! यदि आप अखण्ड ज्ञानके धारक सर्वज्ञ हैं, तो मैं आपको भक्तिपूर्वक आपको भोजन कराकर आपके मतको ग्रहण करूँगी। आप इस विषयमें जरा भी सन्देह न करें।

रानीके मुखसे ये वचन सुन बौद्धगुरुओंको परम संतोष हो गया। हर्षितचित्त हो वे शीघ्र ही महाराजके पास आये और सारा समाचार महाराजको कह सुनाया। बौद्धगुरुओंके मुखसे रानीका इस प्रकार विचार सुन, महाराज भी अति प्रसन्न हुए। उन्हें भी पूरा विश्वास हो गया, कि अब रानी जरूर बौद्ध बन जाएगी तथा रानीकी भांति-भांतिसे प्रशंसा करते हुए, महाराज शीघ्र ही उसके पास गये और उसके मुखपर भी इस प्रकारकी प्रशंसा करने लगे—

प्रिये! आज तुम धन्य हो, कि गुरुओंके उपदेशसे तुमने बौद्धधर्म धारण करनेकी प्रतिज्ञा कर ली। शुभे! तुम ध्यान रखो, बौद्धधर्मसे बढ़कर दुनियाँमें कोई भी धर्म हितकारी नहीं। आज तेरा जन्म सफल हुआ। अब तुम्हें जिस बातकी अभिलाषा हो शीघ्र कहो, मैं अभी उसे पूर्ण करनेके लिए तैयार हूँ तथा इस प्रकार कहते-कहते महाराजने रानी चेलनाको उत्तमोत्तम पदार्थ बनानेकी शीघ्र ही आज्ञा दे दी।

महाराजकी आज्ञा पाते ही रानी चेलनाने शीघ्र ही भोजन बनाना प्रारम्भ कर दिया। लाडू, खाजे आदि उत्तमोत्तम पदार्थ तत्काल तैयार हो गये। जिस समय महाराजने देखा,

कि भोजन तैयार है, शीघ्र ही उन्होंने बड़े विनयसे गुरुओंको बुलावा भेज दिया और राजमहलमें उनके बैठनेके स्थानका प्रबन्ध भी करा दिया।

गुरुगण इस बातकी चिन्तामें बैठे ही थे, कि कब निमंत्रण आए और हम राजमहलमें भोजनार्थ चलें। ज्यों ही निमंत्रण–समाचार पहुँचा, कि शीघ्र ही सभीने अपने वस्त्र पहने और राजमहलकी ओर चल दिये।

जिस समय उन्हें राजमहलमें प्रवेश करते रानी चेलनाने देखा, तो उनका बड़ा भारी सन्मान किया व उनके गुणोंकी प्रशंसा की एवं जब वे बौद्धगुरु अपने अपने स्थानों पर बैठ गये; तब रानी चेलनाने नम्रतापूर्वक उनका पादप्रक्षालन किया तथा उनके सामने उत्तमोत्तम सुवर्णथाल रखकर भांति-भांतिके लाडू-खीर, श्रीखंड, राजाओंके खाने योग्य भात, मूंगके लाडू इत्यादि स्वादिष्ट पदार्थोंको परोस दिया और भोजनके लिए प्रार्थना भी कर दी।

रानीकी प्रार्थना सुनते ही गुरुओंने भोजन करना प्रारंभ कर दिया। कभी तो वे खीर खाने लगे और कभी उन्होंने लाडू पर हाथ अजमाया। भोजनको उत्तम एवं स्वादिष्ट समझ वे मन ही मन अति प्रसन्न होने लगे और बारबार रानीकी प्रशंसा करने लगे।

जिस समय रानीने बौद्ध गुरुओंको भोजनमें अति मग्न देखा, तो शीघ्र ही उसने अपनी प्रिय दासीको बुलाया और यह आज्ञा दी, कि तू अभी राजमन्दिरके दरवाजे पर जा और गुरुओंके बायें पैरोंके जूते लाकर शीघ्र उनके छोटे-छोटे टुकड़े कर मुझे दे।

रानीकी आज्ञा पाते ही दूती चल दी। उसने वहाँसे जूता लाकर और उनके महीन टुकड़े कर शीघ्र ही रानीको दे दिये तथा रानीने उन्हें शीघ्र ही छाछमें डाल दिया एवं उनमें खूब मसाला मिलाकर शीघ्र ही थोड़ा-थोड़ाकर गुरुओंके सामने परोस दिया।

जिस समय मधुर भोजनोंसे उनकी तबियत अकुला गई, तब उन्होंने यह समझा, कि कोई अद्‌भुत चटपटी चीज है, शीघ्र ही उन छाछमिश्रित टुकड़ोंको खा गये। भोजनके अंतमें रानी द्वारा दिये तांबूल, इलायची आदि चीजोंको खाकर और सबके सब रानीके पास आकर उपदेश देने लगे—सुन्दरी! देख तेरी प्रार्थनासे हम सभीने राजमहलमें आकर भोजन किया है। अब आप शीघ्र ही बौद्धधर्मको धारण कर अपनी आत्मा बौद्धधर्मकी कृपासे पवित्र बनाओ। अब आपको जैनधर्मसे सम्बन्ध सर्वथा छोड़ देना चाहिए।

बौद्ध गुरुओंका ऐसा उपदेश सुन रानीने विनयसे कहा—श्रीगुरुओं! आप अपने स्थानों पर जाकर बिराजें, मैं आपके यहाँ आऊँगी और वहीं पर बौद्धधर्म धारण करूँगी।

इस विषयमें आप जरा भी सन्देह न करें। रानी चेलनाके ऐसे विनययुक्त वचन सुन, वे सब गुरु अति प्रसन्न हुए और अपने मठोंको चल दिए।

जिस समय वे दरवाजे पर आये और ज्योंही उन्होंने अपने बाँए पैरके जूतोंको न देखा, वे एकदम घबड़ा गये। आपसमें एक दूसरेका मुंह ताकने लगे एवं कुछ समय इधर-उधर अन्वेषण करके वे शीघ्र ही रानीके पास आये और रानीसे जूतोंकी बाबत कही एवं रानीको डाँटने भी लगे, कि आपको गुरुओंके साथ हंसी नहीं करनी चाहिए।

बौद्ध गुरुओंका यह चरित्र देख रानी हंसने लगी। उसने शीघ्र ही उत्तर दिया— गुरुओं! आप तो ऐसा कहते थे, कि 'हम सर्वज्ञ हैं', अब आपका यह सर्वज्ञपना कहाँ चला गया? आप ही अपने ज्ञानसे जानें, कि आपके जूते कहाँ है? रानीके ऐसे वचन सुन बौद्धगुरु बड़े शरमाए। उनके चेहरोंसे प्रसन्नता तो कोसों दूर किनारा कर गई। अब रानीके सामने उनसे दूसरा तो कोई बहाना न बन सका, किंतु लाचारीसे यही जवाब देना पड़ा—

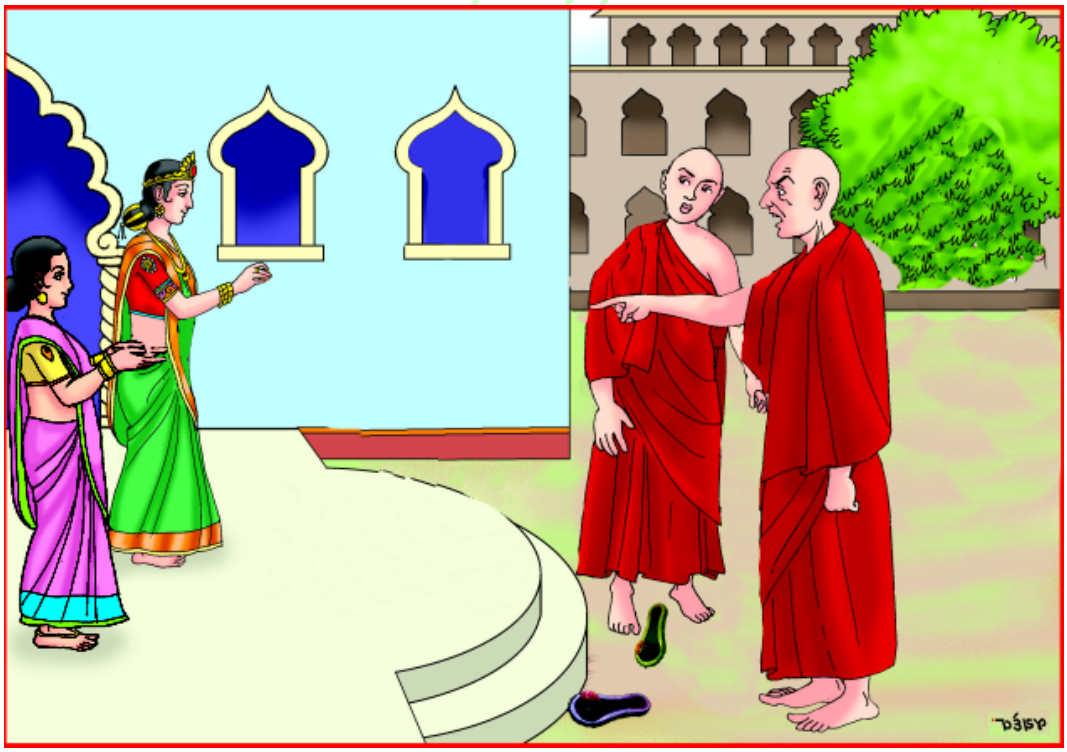

अपने बाये पैरके चप्पल न दिखने पर रानी चेलनाको डाँटते हुए बौद्धगुरु

सुन्दरी! हम लोगोंको ऐसा ज्ञान नहीं, कि हम जान लें, कि हमारे जूते कहाँ है। कृपाकर आप ही हमारे जूते बता दीजिए।

बौद्धगुरुओंके ऐसे वचन सुन रानी चेलनाका शरीर क्रोधसे भभक उठा। कुछ समय पहले जो वह अपने पवित्रधर्मकी निन्दा सुन चुकी थी, उस निन्दाने उसे और भी क्रोधित बना दिया। बौद्धगुरुओंको बिना जवाब दिये उससे नहीं रहा गया। वह कहने लगी—बौद्धगुरुओं! जब तुम जिनधर्मका स्वरूप नहीं जानते, तो तुम्हें उसकी निन्दा करना सर्वथा अनुचित था। बिना समझे बोलनेवाले मनुष्य पागल कहे जाते हैं। तुम लोग कदापि गुरुपदके योग्य नहीं हो, किन्तु भोलेभाले प्राणियोंके बंधक, असत्यवादी, मायाचारी एवं पापी हो।

रानीके मुखसे ऐसे कटुक वचन सुनकर भी बौद्ध गुरुओंके मुखसे कुछ भी जवाब न निकला। वे बारबार उनसे यही प्रार्थना करने लगे—कृपया आप हमारे जूते दे दें, कि जिससे हम आनन्दपूर्वक अपने अपने स्थान पर चले जाएँ। इस प्रकार बौद्धधर्मगुरुओंकी जब प्रार्थना विशेष देखी तो रानीने जवाब दिया—बौद्धगुरुओ! आपकी चीज आपके ही पास है और इस समय भी वह आपके ही पास है। आप विश्वास रखें, आपकी चीज किसी दूसरेके पास नहीं। रानी चेलनाके ये वचन सुन तो बौद्धगुरु बड़े बिगड़े। वे कुपित हो इस प्रकार रानीसे कहने लगे—

रानी! यह तू क्या कहती है? हमारी चीज हमारे पास है, भला बता तो वह चीज कहाँ है? क्या हमने उसे चबाली! तुझे हम साधुओंके साथ ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिए। गुरुओंके ऐसे वचन सुन रानीने जवाब दिया—

गुरुओं! आप घबडायें नहीं, यदि आपकी चीज आपके पास होगी तो मैं अभी उसे निकाल कर देती हूँ। रानीके इन वचनोंने बौद्ध साधुओंको बुद्धिहीन बना दिया। वे बार बार सोचने लगे, कि यह रानी क्या कहती है? यह बात क्या हो गई? मालूम होता है, इस निर्दय रानीने हमें जूतोंका भोजन करा दिया, ऐसा विचार आते ही उन्हें शीघ्र ही वमन हो गया। फिर क्या था? जूतोंके टुकडे तो उनके पेटमें अभी विराजमान ही थे। ज्यों ही वमनमें उन्होंने जूतोंके टुकड़े देखे, उनके सारे होश किनारा कर गये। अब वे बार बार रानीकी निन्दा करने लगे, रानी द्वारा किये हुए, पराभवसे लज्जित एवं राजमहलमें अति अनादरको पा, वे चुपचाप अपने अपने स्थानों पर चले गये। रानीके सामने उनके ज्ञानकी कुछ भी तीन पांच न चली।

कुछ समय बाद राजगृह नगरमें एक विशाल बौद्ध साधुओंका संघ आया। संघके आगमनका समाचार एवं प्रशंसा महाराजके कानोंमें पड़ी। महाराज अति प्रसन्न हो शीघ्र ही रानी चेलनाके पास गये और उन साधुओंकी प्रशंसा करने लगे—

प्रिये! मनोहरे! हमारे गुरु अतिशय ज्ञानी हैं। तपकी उत्कृष्ट शोभाको प्राप्त है। समस्त संसार उनके ज्ञानमें झलकता है और परम पवित्र है। मनोहरे! जब कोई उनसे किसी प्रकारके प्रश्न करता है तो वे ध्यानमें अतिशय लीन होनेके कारण बड़ी कठिनाईसे उसका जवाब देते हैं। एवं वास्तविक तत्त्वोंके उपदेशक हैं और देदीप्यमान शरीरसे शोभित है। महाराजके मुखसे इस प्रकार बौद्ध साधुओंकी प्रशंसा सुन रानी चेलनाने विनयसे उत्तर दिया—

कृपानाथ! यदि आपके गुरु ऐसे पवित्र एवं ध्यानी है तो कृपाकर मुझे भी उनके दर्शन कराईये, ऐसे परम पवित्र महात्माओंके दर्शनसे मैं भी अपने जन्मको पवित्र करूँगी, आप इस बातका विश्वास रखें, यदि मेरी निगाहमें बौद्धधर्मका सच्चापन जम गया और वे साधु सच्चे निकले तो मैं तत्काल बौद्धधर्मको धारण कर लूँगी। मुझे इस बातका कोई आग्रह नहीं, कि मैं जैन धर्मकी ही भक्त बनी रहुं, परन्तु बिना परीक्षा किये दूसरेके कथनमात्रसे, मैं जैन धर्मका परित्याग नहीं कर सकती, क्योंकि हेयोपादेयके जानकार जो मनुष्य बिना समझे बुझे दूसरेके कथनमात्रसे उत्तम मार्गको छोड़कर दूसरे मार्ग पर चलते हैं; वे शक्तिहीन मूर्ख कहे जाते हैं और किसी प्रकार भी वे अपने आत्माका कल्याण नहीं कर सकते।

महारानीके ऐसे निष्पक्ष वचनोंसे महाराजको रानीका चित्त कुछ बौद्धधर्मकी ओर खिंचा हुआ दिख पड़ा। रानीके कथनानुसार उन्होंने शीघ्र ही मण्डप तैयार करवाया। वात ही बातमें ग्रामके बाहर वह बनकर तैयार हो गया। मण्डप तैयार होने पर, बौद्ध गुरुओंने तो मण्डपमें समाधि लगाई। दृष्टि बन्द कर, श्वास रोककर, काष्टकी पुतलीके समान वे बैठ गये। इधर रानीको इस बातका पता लगा। वह शीघ्र पालकी तैयार कराकर उनके दर्शनार्थ आई एवं किसी बौद्धगुरुसे बौद्धधर्मकी बाबत जाननेके लिए वह प्रश्न भी करने लगी।

रानीके प्रश्नको भले प्रकार सुनकर भी, किसी भी बौद्धगुरुने उत्तर नहीं दिया, किन्तु पास ही एक ब्रह्मचारी बैठा था। उसने कहा–मातः! ये समस्त साधुवृन्द इस समय ध्यानमें लीन हैं। समस्त साधुओंकी आत्मा इस समय सिद्धालयमें विराजमान है। देहयुक्त भी इस समय वे सिद्ध हैं। इसलिए इन्होंने आपके प्रश्नका जवाब नहीं दिया।

बौद्ध गुरुके संघमें प्रश्न पूछने पर बौद्ध गुरुके बारेमें एक ब्रह्मचारीका रानी चेलनाको बताना कि 'ये बौद्धगुरु ध्यानमें हैं और अभी उनकी आत्मा सिद्धालयमें है' अतः ये जवाब नहीं देते। यह सुन चेलनाको होता आश्चर्य

ब्रह्मचारीके ऐसे वचन सुन रानी चेलनाने और तो कुछ भी जवाब न दिया, उन्हें मायाचारी समझ, मायाको प्रकट करनेके लिए शीघ्र मण्डपमें आग लगवा दी और उनका दृश्य देखनेके लिए एक ओर खड़ी हो गई एवं कुछ समय बाद राजमहलमें आ गई।

फिर क्या था? अग्नि जलते ही बौद्धगुरुओंका ध्यान न जाने कहाँ खो गया। कुछ समय पहले जो निश्चल ध्यानारूढ बैठे थे, और जिनका आत्मा सिद्धालयमें बिराजमान था। वे अब इधर उधर व्याकुल हो दौड़ने लगे और रानीका सारा कृत्य उन्होंने महाराजको जा सुनाया।

महाराजने रानीके पास जाकर कहा—सुन्दरी! मण्डपमें जाकर तूने यह अति निंद्य एवं नीच काम क्यों कर दिया! अरे! यदि तेरी बौद्धधर्म पर श्रद्धा नहीं है, बौद्ध साधुओंको तू ढोंगी समझती है, तो तू उनकी भक्ति न कर। यह कौन बुद्धिमानी थी, कि मण्डपमें आग लगा तूने उन बिचारोंके प्राण लेने चाहे?

कांते! तू अपनेको जैनी समझ जैन धर्मकी डींग मार रही है, सो यह तेरी डींग अब सर्वथा व्यर्थ मालूम पड़ती है, क्योंकि सिद्धान्तमें जैन धर्म दयाप्रधान माना गया है। दया उसीका नाम है, जिसमें एकेन्द्रियसे पंचेन्द्रियपर्यंत जीवोंकी प्राणरक्षा की जाय, किन्तु तेरे इस दुष्ट वर्तावसे उस दयामय धर्मका पालन कहाँ हो सका? तूने एकदम पंचेन्द्रिय जीवोंके प्राण विधातके लिए साहस कर डाला, यह बड़ा अनर्थ किया। अब तेरा "हम जैन हैं, हम जैन हैं" यह कहना आलाप मात्र है।

चेलनाने कहा, कि हे दीनबन्धो! वहाँ उन साधुओंके साथके एक ब्रह्मचारीसे मुझे यह बात मालूम हुई, कि बौद्ध गुरुओंकी आत्मा इस समय मोक्षमें है, ये इनके शरीर खोखले पड़े हैं, मैंने यह जानकर, कि बौद्धगुरुओंको अब शारीरिक वेदना न सहनी पडे, इसलिए आग लगा दी, क्योंकि इस बातको आप भी जानते हैं, कि जब तक आत्माके साथ इस शरीरका सम्बन्ध रहता है, तब तक अनेक प्रकारके कष्ट उठाने पड़ते हैं, किन्तु ज्यों ही शरीरका सम्बन्ध छूटा त्योंही सब दुःख भी एक ओर किनारा कर जाते हैं। फिर वे आत्मासे कदापि सम्बन्ध नहीं करने पाते। नाथ! शरीरके जल जानेसे अब समस्त गुरु सिद्ध हो गये। यदि उनका शरीर कायम रहता, तो उनकी आत्मा सिद्धालयसे लौट आती और संसारमें रहकर अनेक दुःख भोगती, क्योंकि संसारमें जो इन्द्रियजन्य सुख-दुःख भोगनेमें आते हैं उनका प्रधान कारण शरीर है। यह बात अनुभवसिद्ध है, कि एक इन्द्रिय सुखसे

अनेक कर्मोंका उपार्जन होता है और कर्मोंसे नरकादि गतियोंमें घूमना पड़ता है, जन्म मरण आदि वेदना भोगनी पड़ती है इसलिए मैंने तो उन्हें सर्वथा दुःखसे छुड़ानेके लिए ऐसा किया था।

नरनाथ! आप स्वयं विचार करें, इसमें मैंने क्या जैन धर्मके विरुद्ध अपराध कर दिया? प्रभो! आपको इस बात पर जरा भी विषाद नहीं करना चाहिए। आप यह निश्चय समझें, कि बौद्धगुरुओंका तथाकथित ध्यान नहीं था। ध्यानके बहानेसे भोले जीवोंको ठगना था। मोक्ष कोई सुलभ चीज नहीं, जो हरएकको बातों ही बातोंमें मिल जाय। यदि इस सरल मार्गसे मोक्ष मिल जाय, तो बहुत जल्दी सर्व जीव सिद्धालयमें पहुँच जाय। आप विश्वास रखें, मोक्षप्राप्तिकी जो प्रक्रिया जिनागममें वर्णित है, वही उत्तम और सुखप्रद है। नाथ! अब आप अपने चित्तको शांत करें और बौद्ध साधुओंको ढोंगी साधु समझे।

रानीके इन युक्तिपूर्ण वचनोंने महाराजको अनुत्तर बना दिया। वे कुछ भी जवाब न दे सके, किन्तु गुरुओंका पराभव देख उनका चित्त शांत न हुआ। दिनोंदिन उनके चित्तमें ये विचार–तरंगे उठती रहीं, कि रानीने बड़ा अपराध किया है। मेरा नाम श्रेणिक नहीं जो मैं इसे बौद्धधर्मकी भक्त और सेविका न बना दूँ। आज जो यह जिनेन्द्र पूजन और उनकी भक्ति करती है, सो जिनेन्द्रके बदले इससे बुद्धदेवकी भक्ति कराऊँगा। इस प्रकार अशुभ कर्मके उदयसे कुछ दिन तक ऐसे ही संकल्प-विकल्प करते रहे।

एक दिन महाराजको शिकार खेलनेका कौतूहल उपजा। वे एक विशाल सेनाके साथ शीघ्र ही वनकी ओर चल पड़े। जिस वनमें महाराज गये उसी वनमें महामुनि यशोधर ध्यानारूढ़ थे। मुनि यशोधर परमज्ञानी, आत्मस्वरूपके भले प्रकार जानकार एवं परमध्यानी थे। उनकी आत्मा सदा शुद्धोपयोग/शुद्धपरिणति व यत्किंचित् शुभ योगकी ओर रहती थी। अशुभ योग उनके पास तक भी नहीं फटकने पाता था। मित्र शत्रुओं पर उनकी दृष्टि बराबर थी, त्रैकालिक योगके धारक थे, समस्त मुनियोंमें उत्तम थे, अनन्त अक्षय गुणोंके भंडार थे, देदीप्यमान निर्मल ज्ञानसे शोभित थे, भव्य जीवोंके उद्धारक और उन्हें उत्तम उपदेशके दाता थे।

स्यादस्ति, स्यादनास्ति इत्यादि अनेक धर्मस्वरूप जीवादि सप्त तत्त्व उनके ज्ञानमें सदा प्रतिभासित रहते थे एवं बड़े-बड़े देव और इन्द्र आकर उनके चरणोंको नमस्कार करते थे। महाराजकी दृष्टि मुनि यशोधर पर पड़ी। उन्होंने पहले किसी दिगम्बर मुनिको नहीं देखा था। इसलिए शीघ्र ही उन्होंने किसी पार्श्वचरसे पूछा।

देखो भाई! नग्न, स्नानादि संस्कार रहित, एवं मुँड मुँड़ाये यह कौन खड़ा है? मुझे शीघ्र कहो। पार्श्वचर बौद्ध था। उसने शीघ्र ही इन शब्दोंमें महाराजके प्रश्नका जवाब दिया। कृपानाथ! क्या आप नहीं जानते? शरीर नग्न रखे खड़ा हुआ, महाभिमानी यही तो रानी चेलनाका गुरु है।

बस, वहाँ कहने मात्रकी ही देरी थी। महाराज इस खोजमें बैठे ही थे, कि कब रानीका गुरु मिले और कब उनका अपमान कर, मैं रानीसे बदला लूं! ज्यों ही महाराजने पार्श्वचरके वचन सुने, क्रोधसभर वे विचारने लगे—

अहा! रानीसे वैरका बदला लेनेका आज अवसर मिला है, रानीने मेरे गुरुओंका बड़ा अपमान किया है, उन्हें अनेक कष्ट पहुँचाये हैं, मुझे आज रानीका यह गुरु भी मिला है। अब मुझे भी इसे कष्ट पहुँचानेमें और इसका अपमान करनेमें चूकना नहीं चाहिए। ऐसा एक क्षण विचार कर महाराजने शीघ्र ही पाँचसौ शिकारी कुत्ते, जो लम्बी लम्बी डाढों धारक, सिंहके समान ऊँचे, एवं भयंकर थे, मुनिराज पर छोड़ दिये।

ध्यानस्थ मुनिराज यशोधरजी पर शिकारी कुत्ते छोड़ते हुए राजा श्रेणिक

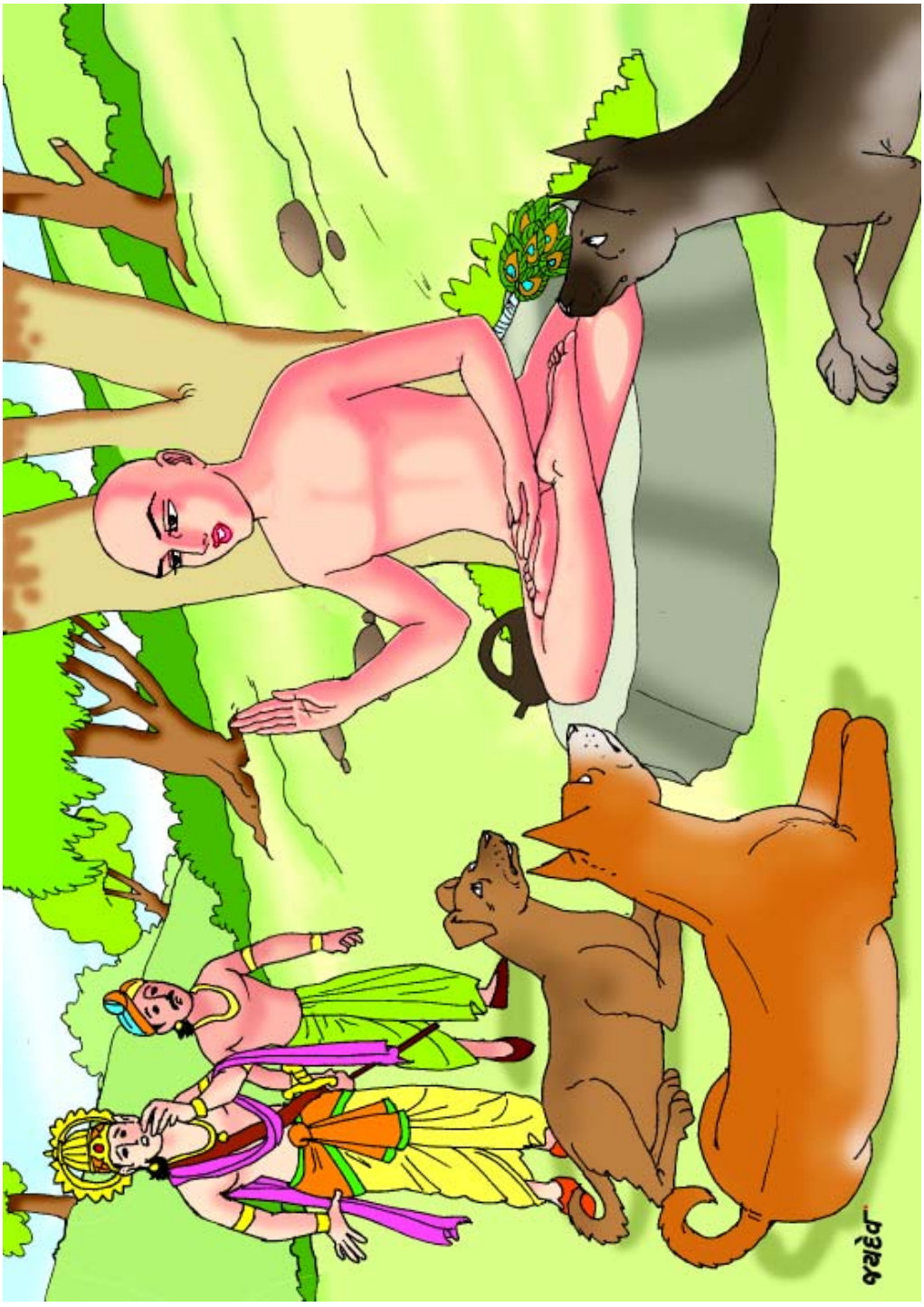

ध्यानस्थ मुनिराज यशोधरजीकी पवित्रता और पुण्य प्रतापसे शांत हो जाते शिकारी कुत्ते

मुनिराज परमध्यानी थे, उन्हें अपने ध्यानके सामने इस बातका जरा भी विचार न था, कि कौन दुष्ट हमारे ऊपर क्या अपकार कर रहा है? इसलिए ज्यों ही कुत्ते पास गये और त्योंही उन्होंने मुनिराजकी शांत मुद्रा देख, सारी क्रूरता छोड़ दी। मंत्रकीलित सर्प जैसा शांत पड़ जाता है, मंत्रके सामने उसकी कुछ भी नहीं चलती, उसी प्रकार कुत्ते भी शांत हो गये। वे मुनिराजकी प्रदक्षिणा देने लगे और उनके चरणकमलोंमें बैठ गये।

महाराज भी दूरसे यह दृश्य देख रहे थे। ज्यों ही उन्होंने कुत्तोंको क्रोधरहित और प्रदक्षिणा करते देखा, मारे क्रोधसे उनका दिल पसीज गया। वे सोचने लगे यह साधु नहीं है, कोई धूर्त मंत्रवादी है। मेरे बलवान कुत्ते इस दुष्टने मंत्रसे कीलित कर दिये हैं।

अस्तु, मैं अभी इसके कर्मका इसे मजा चखाता हूँ। ऐसा विचार कर उन्होंने शीघ्र ही म्यानसे तलवार खींच ली और मुनिके मारणार्थ बड़े वेगसे उनकी ओर धरकर झपटे।

मुनिको मारनेके लिये महाराज जा ही रहे थे, अचानक ही उन्हें एक सर्प, कि जो अनेक जीवोंका भक्षक एवं फण ऊँचे किये था, दीख पड़ा एवं उसे अनिष्टका करनेवाला समझ शीघ्र महाराजने मार डाला और अति क्रूर परिणामी हो पवित्र मुनि यशोधरके गलेमें डाल दिया।

जिस मनुष्यके जैसे परिणाम रहते हैं, उसे वैसे ही फलकी प्राप्ति होती है। महाराज श्रेणिकके उस समय अति रौद्र परिणाम थे। उन्हें तत्काल ही तैतीस सागरकी आयु, पांचसो धनुषका शरीर, विद्वानोंके वचनके अगोचर जिसमें घोर दुःख हैं ऐसे महातमःप्रभा नामक सप्तम नर्कका आयुबंध बंध गया।

यह बात ठीक भी है–जो मनुष्य बिना विचारे दूसरोंको कष्ट देता हैं और विशेषकर साधु महात्माओंको कष्ट दे, उन्हें घोर दुःखोंका सामना करना पड़ता है। महात्माओंको कष्ट देनेवाले मनुष्योंको सदा नरकादि गतियाँ मिलती हैं, किंतु मदोन्मतको इस बातका कुछ भी ज्ञान नहीं रहता। वे वैसा ही काम कर बैठता है। इसलिए राजा श्रेणिकको इस कारका कष्टप्रद आयुबंध बंध गया।

श्रेणिक द्वारा एक दिगंबर गुरुका ऐसा अपमान सुन, बौद्ध गुरुओंको अति प्रसन्नता हुई। वे बारबार श्रेणिककी प्रशंसा करने लगे, किन्तु साधु होकर उनका यह कृत्य उत्तम न था। साधुका धर्म मानापमान, सुख-दुःखमें समान भाव रखना है अथवा ठीक ही था, यदि वे साधु होते तो वे साधुओंके धर्म जानते, किन्तु वहाँ तो वेष साधुका था, आत्माके साथ साधुत्वका कोई संबंध न था।

मुनिके ऊपर किया
दुष्कृत्य रानी
चेलनको सुनाते
राजा श्रेणिक

इस प्रकार तीन दिन तक तो महाराज इधर उधर लापता रहे। चौथे दिन वे रानी चेलनाके राजमहलमें गये। जो कुछ दुष्कृत्य वे मुनिके साथ कर आये थे। सारा रानीसे कह सुनाया और हँसने लगे। महाराज द्वारा अपने गुरुका यह अपमान सुन रानी चेलना अवाक् रह गई। मुनिपर घोर उपसर्ग जान उसकी आँखोंसे अविरल अश्रुधारा बहने लगी। वह कहने लगी–हाय! बड़ा अनर्थ हो गया। राजन्! आपने अपनी आत्माको दुर्गतिका पात्र बना लिया। अरे! अब मेरा जन्म सर्वथा निष्फल है। मेरा राजमहलके भोग भोगना महापाप है।

हाय! मेरा इस कुमार्गी पतिके साथ क्यों संबंध हो गया? युवती होने पर, मैं मर क्यों न गई? अब मैं क्या करूँ, कहा जाऊँ! कहाँ रहूँ! हाय! यह मेरा प्राण पंखेरू क्यों नहीं जल्दी विदा होता? प्रभो! मैं बड़ी अभागिनी हूँ। मेरा अब कैसे भला होगा!

छोटे गांव, वन, पर्वतोंमें रहना अच्छा, किन्तु जिनधर्म रहित अति वैभवयुक्त भी इस राजमहलमें रहना ठीक नहीं। रानीका इस प्रकार रुदन सुन महाराजका हृदय पिघल गया। उस समय उनसे और कुछ न बन सका। वे प्रीतिसे रानीको समझाने लगे—

प्रिये! तू इस बातके लिए जरा भी शोक न कर, मुनिने गलेसे सर्प फेंककर, कबके वहाँसे चल बसे होंगे। मृत सर्पका गलेसे निकालना कोई कठिन नहीं। महाराजके ये वचन सुन रानीने कहा—

नाथ! आपका यह कथन भ्रममात्र है। मेरा विश्वास है, यदि वे मेरे सच्चे गुरु हैं, तो कदापि उन्होंने अपने गलेका सर्प न निकाला होगा। कृपानाथ! अचल मेरुपर्वत कदाचित् चलायमान हो जाय, मर्यादाका नहीं त्यागी समुद्र अपनी मर्यादा छोड़ दे, किन्तु जब दिगम्बर मुनि ध्यानमें एकतान हो जाते हैं, उस समय उन पर घोरतम उपसर्ग भी क्यों न आ जाय, कदापि अपने ध्यानसे विचलित नहीं होते।

प्राणनाथ! क्षमाभूषणसे भूषित दिगम्बर मुनि पृथ्वीके समान अचल होते हैं और समुद्रके समान गंभीर, वायुके समान निष्परिग्रह, अग्निके समान कर्म भस्म करनेवाले, आकाशके समान निर्लेप, जलके समान स्वच्छ चित्तके धारक एवं मेघके समान परोपकारी होते हैं। प्रभो! आप विश्वास रखें, जो गुरु परमज्ञानी, परमध्यानी, दृढ़ वैरागी होंगे, वे ही मेरे गुरु होंगे, किन्तु इनसे विपरीत परीषहोंसे भय करनेवाले, अति परिग्रही, व्रत, तप आदिसे शून्य, मधु, मांस, मदिराके लोलुपी एवं महापापी जो गुरु हैं, सो मेरे गुरु नहीं।

रानीके ऐसे युक्तिपूर्ण वचन सुन राजाका चित्त भयके मारे कांप गया! उस समय और कुछ न कहकर उनके मुखसे ये ही शब्द निकले—

प्रिये! इस समय जो तुमने कहा है, बिलकुल सत्य कहा है, अब विशेष कहनेकी आवश्यकता नहीं। अब एक काम करो। जहाँ पर मुनिराज विराजमान हैं। वहाँ पर हम दोनों शीघ्र चलें और उन्हें जाकर देखें। रानी तो जानेको तैयार थी। उसने उसी समय चलना स्वीकार किया। उधर महाराजने मुनि दर्शनार्थ शीघ्र नगरमें डौंडी पिटवा दी तथा रानी वनकी ओर चलने लगी। महाराज भी एक विशाल सेनाके साथ उनके पीछे घोड़े पर सवार हो चल दिये। वे दोनों दम्पत्ति पलमात्रमें मुनिराजके पास जा पहुँचे।

यह नियम है, कि मुनियों पर जब उपसर्ग आता है, तब वे अंतरंग विशेष शुद्ध परिणति सह अनित्य आदि बारह भावनाओंका चिंतन करने लग जाते हैं। ज्यों ही मुनिराज

मुनिपर किये हुए उपसर्ग दूर करते चेलनाके साथ राजा श्रेणिक

यशोधरके गलेमें सर्प पड़ा, वे इस प्रकार भावना भाने लगे। राजाने जो गलेमें मरा सर्प ड़ाला है, सो मेरा बड़ा उपकार किया है, क्योंकि जो मुनि अपनी आत्मासे समस्त कर्मोंका नाश करना चाहते हैं, वे कर्मोंकी उदीरणाके लिए उपसर्ग सहते हैं। यह राजा मेरा बड़ा उपकारी है। इसने अपने आप उपसर्गकी सामग्री मेरे लिए एकत्रित कर दी है। यह देह मुझसे सर्वथा भिन्न है, कर्मसे उत्पन्न हुआ है और मैं समस्त कर्मोंसे रहित पूर्ण पवित्र हूँ, चैतन्य स्वरूप हूँ। शरीरमें क्लेश होने पर भी मैं क्लेशित नहीं बन सकता। यद्यपि यह शरीर अनित्य है, महा अपावन है, मल-मूत्रका घर है, घृणित है तथापि न मालूम विद्वान लोग क्यों इसे अच्छा समझते हैं? इसे फुलेल आदि सुगन्धी पदार्थोंसे इसका पोषण क्यों करते है? इस प्रकार यशोधर मुनि बारह भावना भाते-भाते शुद्धिमें विशेष विशेष वृद्धि करते जाते थे।

सत्य सिद्धांत पर आरूढ़ रहने पर, अन्य मनुष्य कहाँ तक दास नहीं बनते हैं? जिस समय राजा-रानीने मुनिको ज्योंका त्यों देखा। मारे आनन्दके उनका शरीर रोमांचित हो गया। उन दोनोंने शीघ्र ही समानभावसे मुनिराजको नमस्कार किया एवं प्रदक्षिणा दी। राजाको स्वयं पर ग्लानि और मुनिराज पर विनयभाव प्रकट हुआ। जिससे उन्होंने पूरे समर्पितभावसे भक्तिसह मुनिराज पर उनके द्वारा किये उपसर्गको दूर करनेकी ठानी। रानीके बताये अनुसार वे मुनिराजके उपसर्गको दूर करने तत्पर हुए।

मुनिके दुःखसे दुःखित, किन्तु ध्यानकी अचलतासे हर्षितचित्त एवं प्रशम, संवेग आदि सम्यक्त्व गुणोंसे भूषित रानी चेलनाने राजा श्रेणिककी मददसे शीघ्र ही मुनिराज परसे चींटी दूर की। चींटीयोंने मुनिराजका शरीर खोखला कर दिया था इसलिए राजाने एक मुलायम वस्त्रसे अवशिष्ट चींटीयोंको भी दूर कर उसे गरम पानीसे और संतापकी निवृत्तिके लिए उस पर शीतल चंदन आदिका लेप कर दिया। मुनिराजको भक्तिपूर्वक नमस्कार कर मुनिराजकी ध्यानमुद्रा पर आश्चर्य करनेवाले उनके दर्शनसे अतिशय सन्तुष्ट वे दम्पत्ति आनन्दपूर्वक उनके सामने भूमि पर बैठ गये।

यह नियम है, कि दिगम्बर साधु रातमें नहीं बोलते। इसलिए जब तक रात्रि रही मुनिराजने किसी प्रकार वचनालाप न किया, किंतु अन्धकारको तितर बितर करते हुए ज्यों ही सूर्योदय हुआ, राजा-रानीने शीघ्र ही मुनिराजके चरणोंका प्रक्षालन किया एवं परमज्ञानी, परमध्यानी, जर्जर शरीरके धारक, मुनिराजकी फिरसे तीन प्रदक्षिणा दी और उनके चरणोंकी भक्तिभावसे पूजाकर अपने पापकी शांतिके लिए वह इस प्रकार स्तुति करने लगी—

प्रभो! आप समस्त संसारमें पूज्य हैं। अनेक गुणोंके भण्डार हैं। आपकी दृष्टि शत्रु मित्र पर बराबर है। दीनबन्धो! सुमार्गसे विमुख जो मनुष्य आपके गलेमें सर्प डालनेवाले हैं और जो आपको फूलोंके हार पहनानेवाले हैं, आपकी दृष्टिमें दोनों ही समान है। कृपासिन्धों! आप स्वयं संसार-समुद्रसे पार होनेवाले हैं एवं जो जीव दुःखरूपी तरंगोंसे टकराकर संसाररूपी बीच समुद्रमें पड़े हैं, उन्हें भी आप तारनेवाले हैं। जीवोंके कल्याणकारी आप हैं।

करुणासिन्धो! हमसे अज्ञानवश आपकी जो अवज्ञा और अपराध हुआ है, आप उसे क्षमा करें। कृपानाथ! यद्यपि मुझे विश्वास है, कि आप राग-द्वेष रहित हैं। आपसे किसीका अहित नहीं हो सकता तथापि मेरे चित्तमें जो अवज्ञाका संकल्प बैठा है, वह मुझे सन्ताप दे रहा है। इसीलिए मैंने आपकी स्तुति की है। प्रभो! आप मेघतुल्य जीवोंके परमोपकारी हैं, आप ही धीर और वीर हैं एवं शम भावना भानेवाले है।

इस प्रकार राजा-रानी द्वारा भलेप्रकार मुनिकी स्तुति समाप्त होने पर राजा रानीने भक्तिपर्वक फिर मुनिराजके चरणोंको नमस्कार किया और यथास्थान बैठ गये एवं मुनिराजने भी अतिशय नम्र दम्पत्तिको समानभावसे धर्मवृद्धिका वर दिया तथा इस प्रकार उपदेश देने लगे—

विनीत मगधेश! संसारमें यदि जीवोंका परममित्र है, तो धर्म ही है। इस धर्मकी कृपासे जीवोंको अनेक प्रकारके ऐश्वर्य मिलते हैं, उत्तम कुलमें जन्म मिलता है और संसारका नाश भी धर्मकी ही कृपासे होता है। इसलिए उत्तम पुरुषोंको चाहिए, कि वे सदा उत्तम धर्मकी आराधना करें। इस भांति उपदेश देकर मुनिराज शान्त हो गये।

देखो, भाग्यका माहात्म्य! कहाँ तो परमपवित्र मुनि यशोधरका दर्शन और कहाँ बौद्धधर्मका परम भक्त? कहाँ मगधेश राजा श्रेणिक तथा कहाँ तो रानी चेलना द्वारा बौद्धधर्मकी परीक्षा पर बौद्ध साधुओंको क्रोध और कहाँ महाराज श्रेणिककी परीक्षासे मुनिराजको तनिक भी क्रोध नहीं! कहाँ तो श्रेणिकका मुनिराजके गलेमें सर्प गिराना और कहा फिर रानीका उपदेश? एवं कहाँ तो रात्रिमें राजा-रानीका वन गमन और कहाँ समान रीतिसे धर्मवृद्धिका मिलना? ये सब बातें उन दंपतिको शुभ-अशुभ भाग्योदयसे प्राप्त हुई।

मुनिराजका उपदेश सुनते हुए महाराजा श्रेणिककी आँखोंसे पश्चात्तापरूप अश्रुधारा निकल पड़ी, जैसे किये मिथ्यात्वरूप पापका मल ही अश्रुसे न निकल रहा हो और सम्यक्त्व प्राप्त किया जिससे सातवीं नरकका ३३ सागरका आयुष्य घटकर प्रथम नरकका ८४ हजार

वर्षका रह गया। ऐसी अक्षुण्ण विचारधाराके जोरमें राजा श्रेणिकको सच्चे देव-गुरु-धर्म पर अनहद श्रद्धा अर्थात् निज आत्मस्वभावकी अत्यधिक महिमारूप झुकावरूप सम्यक्त्व हो जाता है।

मुनि यशोधरने जो धर्मवृद्धि दी थी, वह साधारण न थी, किंतु स्वर्ग-मोक्ष आदि सुख प्रदान करनेवाली थी—संसारसे पार करानेवाली थी। तीर्थंकर, इन्द्र, अहमिन्द्र आदि पदोंकी प्रदात्री थी। 'महाराज आगे तीर्थंकर होंगे' इस बातको प्रकट करनेवाली थी और धर्मसे विमुख महाराजको धर्म-मार्ग पर लानेवाली थी।

उपसर्ग विजयी महा तपस्वी मुनिराज यशोधर भगवंतको कोटि-कोटि वंदन।

जैन पौराणिक लघुकथाएँ भाग-३ (हिन्दी)

प्रस्तुत आवृत्तिके प्रकाशनार्थ प्राप्त दानराशी

रू. ५000=00

श्री पवनकुमार जैन, सोनगढ

रू. २000=00

श्री अक्षिता, अपेक्षा, अविरल
ह. समीक्षा प्रकाश, सुजानगढ
श्री दीपिकाबेन गंगावत, उदेपुर

रू. ११११=00

श्री आर्या जितेन्द्र जैन, सोनगढ

रू. ११00=00

श्री सार्थक जैन
श्री ध्रुव अनीलकुमार जैन, बुलंदशहर

रू. १000=00

श्री अजीतकुमार राजकुमार गांधी, मानसा
श्री मीमांसा चिदेश चंपावत, उदेपुर
श्री विशाल प्रकाशभाई जैन, खंडवा
ह. पंचरत्न परिवार
श्री मानुबेन जैन, उदेपुर
श्री सज्जनलालजी बंडी, उदेपुर
श्री लक्ष्मीलालजी बंडी, उदेपुर
श्री प्रतीति-दीपिका गंगावत
श्री अविरल अपेक्षा, प्रतापगढ
श्री ज्ञायक और रश्मि जैन, शिवपुरी
श्री निश्चल निशित शाह, हैदराबाद
श्री कुमुदबेन धर्मचंद जैन, जबलपुर
ब्र. वीणाबेन एवं सोनलबेन कामदार, सोनगढ
श्री कुसुमबेन मोतीलाल जैन, जबलपुर
श्री अनन्या एवं अनन्य, खंडवा
श्री वीणाबेन भद्रेशभाई तलाटी, सोनगढ
श्री आदिनाथ दिगंबर जैन मंदिर, खंडवा
श्री सरोजबेन नेमीचंद, खंडवा
श्री प्रतीभाबेन अमरचंद जैन, खंडवा
श्री निरंजनभाई जैन, उदेपुर
श्री प्रकाशभाई पाटनी, इन्दौर
श्री प्रदीपभाई गोधा, इन्दौर
श्री वीणाबेन कमलेश जैन, उदेपुर
श्री भगवतीबेन जैन, उदेपुर
श्री खुशी तन्मय कोरीया, पूना
श्री विशाल विजयकुमार पंचोली, भीलवाडा
श्री कुसुमबेन ज्ञानचंदजी जैन, सोनगढ

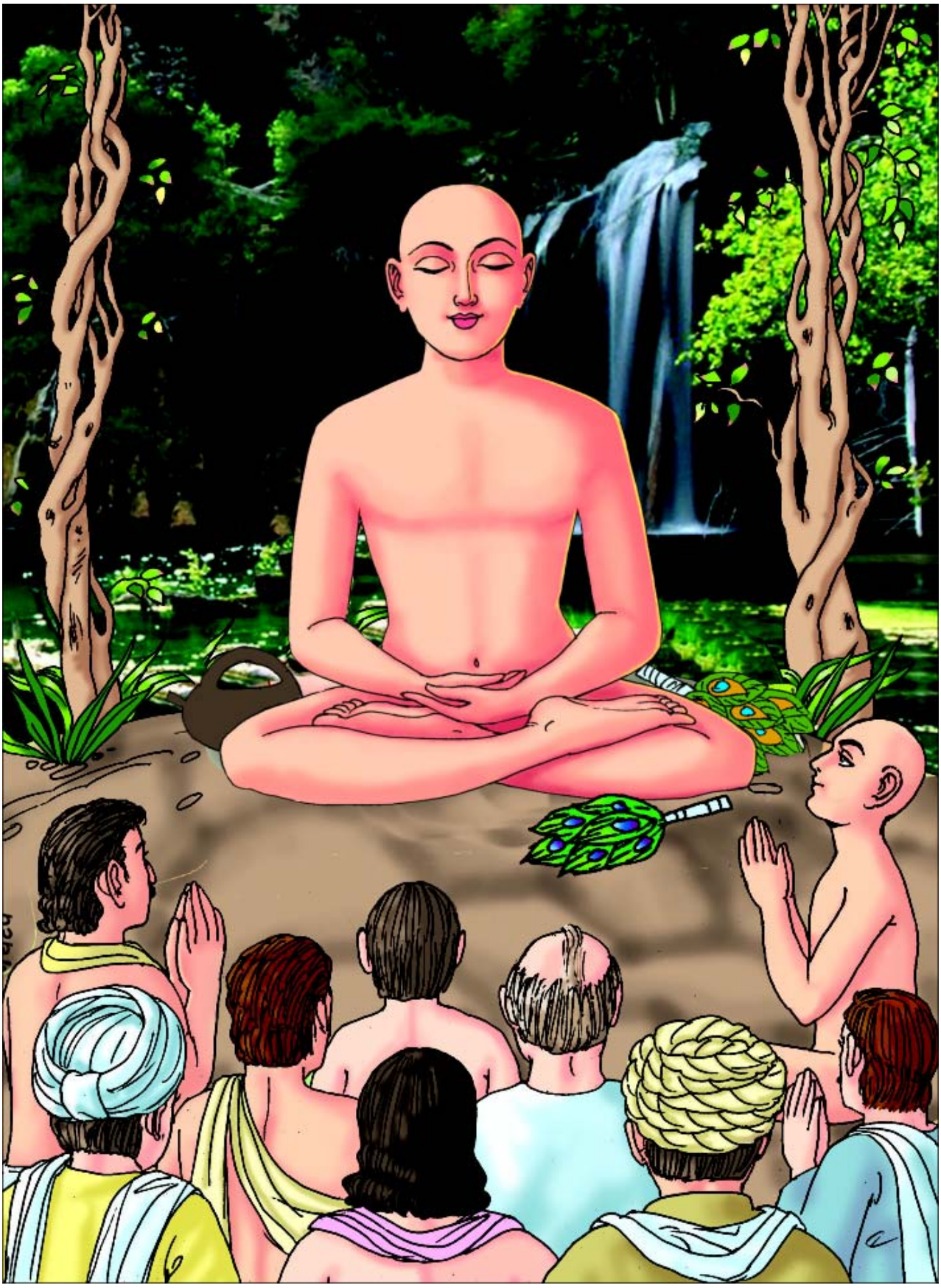

मुनिराज भक्ति

उपसर्ग-विजयी मुनिराजके, चरण कमल सुखदाय।
बारवार विनती करो, मन वच शीष नवाय,
हमारी करुणा ल्यो ऋषिराज ॥

थावर जंगम जीवके, रक्षक हैं मुनिराय।
मोहि कर्म दुख देत हैं इनतैं क्यों न छुडाय ॥ हमारी० ॥३॥

राज ऋद्धि तज वन गए, धर्यो ध्यान चिद्रूप।
ऋद्धि आय चरणा लगी, नमन करत सब भूप ॥ हमारी० ॥४॥

तपगज चढि रण-भूमि में, क्षमा खडग कर धार।
करम अरी की जय करी, शांति ध्वजा करि लार ॥ हमारी० ॥५॥

निराभरण तन अति लसै, निर अंवर निरदोष।
नगन दिगंवर रूप है, सकल गुणनिको कोष ॥ हमारी० ॥६॥

उपसर्ग 'नेक भये तदपि, किंचित् नहिं लवलेश।
मूरति शान्त दयामयी वंदित सकल सुरेश ॥ हमारी० ॥६॥

तुम ऋषि दीनदयाल हो, अशरण के आधार।
बार बार विनती करों, मोहि उतारो पार ॥ हमारी० ॥८॥

जो त्रिभुवनके सब मिलें, दानव मानव इन्द्र।
हलै चलै नहिं सबनितें, ध्यानमें रहे मुनिंद ॥ हमारी०॥९॥

मैं दुखिया संसारमें, तुम करुणानिधि देव।
हरौ दुःख यह मो तणो, करि हों तुम पद सेव ॥ हमारी० ॥१०॥

तुम समान संसारमें, तारण तरण जिहाज।
हे मुनीश! कोऊ नहीं, यातें तुमही नाथ ॥ हमारी० ॥११॥

तुम पद मस्तक हम धरें, भरी भक्ति उर मांहि।
निज स्वरूप मय कीजिए, भव-संतति मिट जाहिं ॥ हमारी० ॥१२॥

અનુભૂતિ તીર્થ મહાન, સ્વર્ણપુરી સોહે
યહ કહાનગુરુ વરદાન, મંગલ મુક્તિ મિલે.